॥ श्रीस्वामिनारायणो विजयते ॥

अक्षरब्रह्म गुणातीतानंद स्वामीजी का

उपदेशामृतम्

संकलित

प्रकाशक

स्वामिनारायण अक्षरपीठ

शाहीबाग, अहमदाबाद – ३८० ००४

UPADESHĀMRUTAM (Hindi Edition)
(Sermons of Aksharbrahman Gunātitānand Swāmi)
Inspirer: HDH Pramukh Swāmi Mahārāj
Presented by: Bochāsanwāsi Shree
Akshar Purushottam Swāminārāyan Sansthā
Shāhibaug, Amdāvād - 380 004. India.
Publishers: SWĀMINĀRĀYAN AKSHARPITH
Shāhibaug, Amdāvād - 380 004. India.
2nd Edition:
January 2001. Copies: 3,000 (Total copies: 8,000)

ISBN: 81-7526-172-2

रजूकर्ता : बोचासणवासी श्री अक्षरपुरुषोत्तम
स्वामिनारायण संस्था, अमदावाद - ३८० ००४.

प्रेरक : प्रकट ब्रह्मस्वरूप प्रमुखस्वामी महाराज

द्वितीय आवृत्ति : जनवरी २००१

प्रति : ३,००० (कुल प्रति : ८,०००)

कीमत : रू. १२-००

मुद्रक एवं प्रकाशक :
स्वामिनारायण अक्षरपीठ
शाहीबाग, अहमदाबाद - ३८० ००४

प्रकाशकीय

अमृत !

अमृत की खोज़ यह एक कल्पनातीत ललकार है । अमृत की ओर जाना, अमृत को पाना सभी को पसंद आता है अतएव वेदकालिन ऋषि प्रार्थना के नाद गुंजाते हैं : अमृतं गमय ।

अमृत यानी शाश्वत सुख । आदिकाल से मनुष्य शाश्वत सुख की खोज़ में खो गया है । अमृत की खोज़ में ही उसने बुद्धि को आसमान पहुँचायी है और विज्ञान की उंगली पकड़कर भौतिकता की ओर मृग-छलांग भरी है । फिर भी महदंश वह उसमें असफल रहा है यह निर्विवाद है !

उसी अमृत की बात यहाँ कही गई है ।

अक्षरब्रह्म गुणातीतानंद स्वामी अनुभव के उजास कि दिशा में निर्देश करते रहे हैं । भगवान की मूर्ति अमृत है । सुख उसमें ही निहित है । उसको प्राप्त करने के लिए प्रभुमय संत का समागम ही एक माध्यम है । गुणातीतानंद स्वामी अनेक मुमुक्षुओं के लिए ऐसा अनोखा माध्यम बने थे ।

मानव के अंतर में भरे हुए जन्मोजन्म के अज्ञानविष को धोकर वहाँ अमृत - भगवान की मूर्ति - को प्रतिष्ठित करने के लिए वे अजोड़ कसबी थे । उनका कसब यानी उनकी बातें, वो भी अमृत के प्रपात के समान ।

उनकी बानी की विशेषता यही थी कि वे गहन से गहन आध्यात्मिक सत्य को सरल भाषा में जनता के समक्ष रख देते थे । सरल, सचोट, एवं व्यावहार्य दृष्टान्तों के द्वारा धर्म, ज्ञान, वैराग्य एवं भक्ति की सुसंबद्ध स्पष्टता जनहृदय में बैठ जाती थी ।

जीवन के अंतिम श्वास तक उन्होंने अमृतवाणी का प्रवाह अटूट सा रखा था । उसमें से उनके शिष्यगण ने यथाशक्ति आचमन करके उसे शब्दबद्ध किया वह पुस्तक 'स्वामी की बातें' नाम से सुप्रसिद्ध है । इन बातों की संख्या करीब १४९३ हैं जिनमें से कतिपय बातों का चयन करके यह लघु पुस्तिका तैयार की गई है । इस पुस्तिका में विषयवार संकलन है जो परिचयमात्र है । इस पुस्तिका में सहयोगी भक्तों-संतों का हम आभार प्रदर्शित करते हैं ।

आइये, अमरता की ओर गतिशील बनें... परमात्मा की अनुभूति करें...

– **स्वामिनारायण अक्षरपीठ**

परिचय

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान स्वामिनारायण

श्री अक्षरपुरुषोत्तम संस्था के विराट आंदोलन के आदि पुरुष हैं – पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान स्वामिनारायण । इस पृथ्वी पर उनका जीवन मृदु मानवता और असीम करुणा की गाथा है । ३ अप्रैल, सन् १७८१ ईस्वी को उत्तर भारत के छोटे से गांव छपिया में वे अवतरित हुए । बाल्य-काल से उन्होंने अपनी आध्यात्मिक श्रेष्ठता को उद्‌घाटित किया । ७ साल की लीलामयी आयु में उन्होंने वेदों, उपनिषदों, भागवत एवं रामायण पर पूर्ण अधिकार पा लिया और वाराणसी में एक आध्यात्मिक शास्त्रार्थ में विख्यात पंडितों को पराजित कर नव्यविशिष्टाद्वैत के दर्शन को प्रस्थापित किया । ११ वर्ष की सुकुमार आयु में उन्होंने संसार का त्याग करके सकल भारत में भ्रमण किया, और अन्ततः गुजरात को अपनी कर्मभूमि बनायी । २१ वर्ष की आयु में उन्होंने गुजरात के प्रसिद्ध संत स्वामी रामानंदजी की आध्यात्मिक धुरा धारण की । उनके सम्मोहक दिव्य व्यक्तित्व ने सभी क्षेत्रों के श्रेष्ठ व्यक्तियों को आकर्षित किया और उनका शिष्यत्व स्वीकार करने पर बाध्य किया । लोगों ने परब्रह्म के रूप में उनकी उपासना की ।

उन्होंने, दलितों, गरीबों, पिछडे हुए लोगों, तथा पापयुक्तों की ओर पूर्ण ध्यान देकर, मानवमात्र की आध्यात्मिक – समता पर जोर दिया । अपने समर्पित अनुयायियों के माध्यम से उन्होंने क्रान्ति की । उस समाज का परिशोधन किया जो राजनीतिक रूप से भ्रष्ट, सामाजिक रूप से छिन्न-भिन्न और आध्यात्मिक रूप से कंगाल था । उनके प्रमुख अस्त्र प्रेम और अहिंसा ने समाज को कुरीतियों, दुर्व्यसनों, अंधविश्वासों और वहमों से मुक्ति दिलवाई ।

जाति, संप्रदाय, रंग और देश का भेद-भाव न रखते हुए उन्होंने सबका स्वागत किया और उन्हें चरम मोक्ष से विभूषित किया। छः उच्च शिखरबद्ध मंदिरों, अनेक शिक्षा केन्द्रों और वचनामृत एवं शिक्षापत्री – इन दो धर्मग्रंथों, समाज उत्थान में समर्पित हज़ारो संत-परमहंस शिष्यों एवं लाखों हरिभक्तों के आचार शुद्ध-विचार शुद्ध समुदाय से समाज को समृद्ध कर, ४९ वर्ष की अल्पायु में उन्होंने इस मर्त्य संसार का त्याग किया। लेकिन सर्वोपरि, उन्होंने यह वचन दिया कि ब्रह्मस्वरूप गुरु–परंपरा के माध्यम से वे पृथ्वी पर सदैव विराजमान रहेंगे।

साक्षात् अक्षरब्रह्म गुणातीतानंद स्वामी, ब्रह्मस्वरूप प्रागजी भक्त, ब्रह्मस्वरूप शास्त्रीजी महाराज, ब्रह्मस्वरूप योगीजी महाराज और वर्तमान में प्रगट ब्रह्मस्वरूप प्रमुखस्वामी महाराज जैसे महान विभूतिस्वरूप संतों की परंपरा के द्वारा असंख्य लोग आज भी भगवान स्वामिनारायण के दिव्य सान्निध्य की अनुभूति करते हैं। दिव्य शांति की भागीरथी में स्नान करते हैं...

अक्षरब्रह्म गुणातीतानंद स्वामी

भगवान स्वामिनारायण ने भागवत धर्म के प्रसार तथा पूर्ति के लिए स्त्री और धन के विरक्त पाँच-सौ से भी अधिक महान संत-परमहंस शिष्य वृंद समाज खड़ा किया था। इन सब में भी ब्राह्मी स्थिति के प्रेरक बल के समान विशेष प्रतिभा से युक्त थे अक्षरब्रह्म गुणातीतानंद स्वामी। श्रीजीमहाराज ने अनेक अवसरों पर इन शब्दों की उनके स्वरूप का परिचय सबको कराया था : 'ये गुणातीतानंद स्वामी अक्षर अर्थात् ब्रह्म अवतार हैं। एक स्वरूप में वे हमारे निवास का दिव्य अक्षरधाम हैं, तथा दूसरे स्वरूप में हमारे अखण्ड सेवक हैं।' सम्प्रदाय का इतिहास इस

कथन की साक्षी देता है ।

अपने इष्टदेव-स्वामिनारायण भगवान की सर्वोच्च महिमा का प्रचार करने में गुणातीतानंद स्वामी का योगदान सबसे उत्तम था । अपने उपास्य देव के प्रति उनकी असाधारण सेवा तथा निर्दोष भक्ति ही अन्य संतों की अपेक्षा उनकी विशेषता दिखाने के लिए काफी है । साथ ही साथ, त्याग, वैराग्य, सेवा भावना तथा दासत्व भाव को भी उनके जीवन से एक क्षण के लिए अलग नहीं किया जा सकता । इसके फलस्वरूप उनके समागम में रहनेवाले अनेक त्यागियों और गृहस्थियों ने अपने जीवन में ऐसे सद्‌गुणों को आत्मसात् करके सदेह स्थिति में भी ब्रह्मदशा का अनुभव किया है ।

और, सब से विश्वसनीय उदाहरण हो तो स्वामी के बाद उनके द्वारा चालू रही हुई उज्ज्वल शिष्यपरम्परा का । शिष्य सवाया बने, इसी में गुरु की महत्ता है । गुणातीतानंद स्वामी के बाद उनकी ही कृपा के फलस्वरूप, उनके भाव को प्राप्त किये हुए, ब्रह्मस्वरूप प्रागजी भक्त, और उसके बाद क्रमशः प्रकट हुए ब्रह्मस्वरूप शास्त्रीजी महाराज, ब्रह्मस्वरूप योगीजी महाराज तथा वर्तमान में विद्यमान ब्रह्मस्वरूप प्रमुखस्वामीजी महाराज । यह विरासत ही ५०० परमहंसों में स्वामी की विशेषता का सबूत हमेशा देती रहेगी ।

विषयतालिका

उपदेशामृतम्...

सुख

जिसे सुखी रहना हो, वह अपने से अधिक दुःखी की तरफ देखें, पर अपने से अधिक सुखी हो, उसके सामने न देखें, क्योंकि सुख तो उसे अपने प्रारब्ध[१] के अनुसार मिला है ।

•

तीन व्यक्ति सुखी हैं : एक तो वह, जो बड़े साधु कहें वैसा करे, दूसरा वह ज्ञानी, जो मन का कहा न माने और तीसरा वह, जिसे कुछ भी नहीं चाहिए ।

•

मनुष्य को भगवान के सुख की अनुभूति नहीं होती, इसका कारण है कि संसार के विषय उसको उलझाए रखते हैं ।

•

सभी किसी न किसी सहारे से सुखी रहते हैं, पर भगवान और आत्मा इन दो के सहारे से ही सुखी होना चाहिए । शेष दूसरे सहारों को छोड़ देना चाहिए ।

•

इस लोक में अक्षरधाम[२] का सुख क्या है ? शुभ संकल्प हों और हृदय सुख से पूर्ण हो । तथा यमपुरी का दुःख जैसा क्या है ? हृदय में कुविचार पैदा हों और कष्ट हो ।

•

बछड़े को दूध का स्वाद है और चिचड़ी को खून का

---

१. गत जन्म तथा इस जन्म के किये हुये कर्मों का संचय (भाग्य) प्रारब्ध

२. भगवान का दिव्यधाम

स्वाद है, वैसे ही खाने-पीने का सुख और मान-सम्मान-बड़प्पन का सुख खून के जैसा है और खुद की आत्मा को ब्रह्मरूप मानकर भक्ति करना, यह सुख दूध जैसा है ।

•

'सौ करोड़ राख की पुड़ियाएँ बनाकर संदूकों में भरकर रख दें और ताले लगा दें । फिर किसी दिन जरूरत होने पर निकाले तो क्या कुछ उनमें से अच्छा निकलेगा ?' 'नहीं ।' फिर स्वामी बोले : 'महाराज[१] की मूर्ति के बिना और इस साधु के बिना सुख-शांति कहीं भी नहीं है ।' ऐसा कहकर स्वामी बोले :

सुरपुर,[२] नरपुर,[३] नागपुर,[४] तीन में सुख नाहि ।
या सुख हरि के चरन में, या संतन के मांहि ॥

•

चार बातों में सुख है । पहली भगवान की मूर्ति की स्मृति, दूसरी साधु की संगति, तीसरा सद्विचार और चौथी बात है जीव ने विषय में जो सुख माना है लेकिन वह तो दुःखरूप है और सुख तो तीन बातों में ही है और विषय में सुख है, ऐसा तो किसी भी बड़ों ने नहीं कहा है और आत्मभाव से आचरण करना, यह तो एक विरल ही बात है । इसमें तो कामादिक दोष होते ही नहीं हैं, जैसे कि गुजरात की धरती को कितना भी गहरा क्यों न खोद लें, पत्थर मिलेगा ही नहीं ।

दुःख

इस लोक में दो दुःख हैं : अन्न वस्त्र मिले नहीं और खाया हुआ पचे नहीं । इनके अलावा दूसरे दुःख तो अज्ञान

---

१. भगवान स्वामिनारायण २. स्वर्गलोक ३. मनुष्यलोक ४. पाताललोक

के कारण हैं ।

•

दुःख तीन प्रकार के हैं उनमें अभी दो दुःख नहीं हैं: अधिभूत यानी कोई मारता नहीं है । अधिदैव यानी अकाल नहीं पड़ता । अब तीसरा अध्यात्म यानी मन की पीड़ा, यह दुःख रहता है, उसको नाश करने के लिए ज्ञान है । ज्ञान होने पर दुःख नहीं रहता । इसके अलावा दूसरा कोई उपाय नहीं है ।

•

क्लेश कब नहीं होता है ? राग, पक्षपात[१] और अज्ञान ये तीन न हों तो क्लेश नहीं होता है । इनमें से कोई एक भी हो तो भी क्लेश होता है ।

•

जिसको किसी की भी अपेक्षा न हो तो उसे दुःख नहीं होता और अपेक्षा होने पर भी निर्मानी रहे तो भी दुःख नहीं होता ।

•

कभी दुःख नहीं मानना । जो चाहिए सो हमें मिल चुका है । खूब ढ़ेर सारे रूपये मिल जाएँगे तो प्रभु-भजन छूट जायेगा । इसी कारण प्रभु अधिक देते नहीं हैं ।

•

भगवान मिले, साधु मिले, फिर हृदय में दुःख को मत आने दो । प्रारब्ध के कारण आता हो तो उसे भोग लेना ।

•

जीव कर्मवश होकर तो दुःख सहन करता ही है, पर इसी तरह वह आत्मकल्याण के लिए सहन नहीं करता है । यदि

---

१. जूठा ममत्व

बिच्छू ने डंक मारा हो तो वह सारी रात जागेगा, पर रात्रि में नींद को छोड़ भजन करना होगा तो नहीं करेगा ।

•

संसार में सुख जैसे लगता है, पर उसमें वस्तुतः तो दुःख है। जिस तरह गन्ने में पैदा हुआ कीड़ा सुख मानता है पर कोल्हू में पेरते समय वह निचुड़ जाता है । जैसे कौए को श्राद्ध के सोलह दिनों का सुख और फिर तो बंदूक की गोली का निशान बनना ही है ।

•

भगवान और बड़े साधु के आश्रय से बादल जैसे घोर दुःख आनेवाले हों तो भी टल जाएँ । यों कोई उपाय कर-कर के मर भी जाए तो भी टले नहीं ।

•

छोटा बालक हो और उसे भय लगे तो वह अपने माता-पिता से चिपट जाता है । वैसे ही हमें भी हर दुःख में भगवान का भजन करना चाहिए, स्तुति करनी चाहिए, तो भगवान रक्षा करेंगे ।

•

भगवान से जितना अलगपन रहता है, अंतर में उतना ही दुःख होता है । भगवान को हमारी चिंता है । भगवान हमारी रक्षा में हैं। जिस तरह बच्चों को माता-पिता से गहनों के लिए कहना नहीं पड़ता, पर माता-पिता खुद ही बनवाते हैं । उसी तरह हमें भी भगवान से कहना नहीं पड़ेगा, वे खुद ही रक्षा करेंगे ।

शान्ति

मन से प्रेरित जो भजन-भक्ति इत्यादि करता है उसके अंतर

में शांति नहीं होती । पर भगवान और साधु के आदेशानुसार करें तो उससे शांति मिलती है ।

•

व्यासजी ने बड़ा कठोर तप किया, अनेक शास्त्र-पुराणों की रचना की पर शांति नहीं मिली । फिर नारदजी के कहने से 'श्रीमद् भागवत' की रचना की । उसमें भगवान और भगवान के भक्त के गुणों का गान किया तब जाकर उन्हें परम शांति मिली । इसलिए हमें भी इसी तरह करना चाहिए ।

•

हमें भगवान और साधु मिले हैं और इन्हें हमने पहचाना है, इसलिए अब कुछ भी करना शेष नहीं रहा है । फिर भी यदि शांति नहीं मिली है तो उसके कारण है : विषयों में आसक्त होकर मन के अनुसार करना, आज्ञा का लोप करना तथा अज्ञान – इनके कारण शांति नहीं मिलती है ।

•

अंतर शीतल रहे और शांति बनी रहे, इसके दो उपाय हैं : एक तो भगवान का भजन करना और दूसरा भगवान को सर्वकर्ता समझना । फिर सुख मिले तो सुख भोग लेना और दुःख मिले तो दुःख भोग लेना । क्योंकि हरि कभी दास के दुश्मन नहीं होनेवाले हैं । जैसा भी करेंगे वह हित के लिए ही करेंगे ।

•

दुविधा से मुक्त होना हो तो काल की गति पर विचार करना, जन्म-मृत्यु के दुःख पर विचार करना, भगवान की महिमा पर विचार करना, क्योंकि भगवान के सिवाय हमारा कोई

नहीं है और आत्मा तो तीन देहों[१] से विलक्षण है ।

•

'दुविधा की स्थिति में क्या करना चाहिए ?' इस प्रश्न का उत्तर है कि 'स्वामिनारायण... स्वामिनारायण...' स्मरण करना । जिससे दुविधा टल जाएगी ।

मनुष्य देह

करोड़ों रूपये खर्च करें तो भी ऐसे साधु नहीं मिलते, करोड़ों रूपये खर्च करें तो भी ऐसी बातें नहीं मिलतीं और करोड़ों रूपये खर्च कर दें तो भी मनुष्य देह नहीं मिलती । हम भी करोड़ो जन्म ले चुके हैं पर कभी ऐसा सुयोग नहीं मिला है । नहीं तो क्यों यह देह धारण करनी पड़ती ?

•

एक लकड़हारा था । वह लकड़ियों का भार उठाकर बेचा करता था । एक दिन हेमगोपाल की झाड़ी से लकड़ियों के साथ बावने चंदन[२] की लकड़ी आ गई । वह तो इसे पहचानता भी नहीं था । वह तो चूल्हे में डालकर जला देने लगा तो इसकी सुगंध एक सेठ को आई । फिर उस सेठ ने पूछा कि इस गांव में बावने चंदन की लकड़ी जलाए, ऐसा धनवान कौन है ? तब सभीने कहा कि इस गाँव में तो एक लकड़हारा रहता है । फिर उस सेठ ने वहाँ जाकर जलती-जलती कुछ लकड़ी बची थी, इसे लाकर और फिर घिसकर विष्णु भगवान को चंदन लगाया । उस सेठ ने जब अपना

१. तीन देह – स्थूल, सूक्ष्म और कारण ।
२. बावना चंदन–पावन चंदन (संस्कृत) एक प्रकार का सुगंधित चंदन

शरीर छोड़ा तब वह विष्णुलोक में गया । यह तो दृष्टांत है । इसका सिद्धांत[१] तो यह कि हेमगोपाल के स्थान पर तो यह भारतवर्ष है, और 'बावना' चंदन के स्थान पर मनुष्य देह है। मनुष्य अनजान में ही इसे स्त्री, द्रव्य, पुत्र, पुत्री, लोक, भोगविलास इत्यादि में जला देता है । वैसे हमें इसे जला नहीं देना चाहिए । हमें तो '*अर्थं साधयामि वा देहं पातयामि*'[२] पर ही दृढ़ रहना चाहिए ।

●

यह महल मिले हैं, अच्छे-अच्छे पकवान खाने को मिलते हैं और आदर मिलता है, पर ये सभी मनुष्य देह का फल नहीं है । मनुष्य देह का फल तो अच्छों की संगति और स्वभाव का दूर होना इतना ही है ।

जीवात्मा

चाहे कितने भी रूपये खर्च कर दें, आंख, कान आदि इन्द्रियाँ मिल नहीं सकतीं । ये तो भगवान की ही देन है, पर जीव तो केवल कृतघ्नी ही है ।

●

जीव बहुत बलवान है । वह सिंह के शरीर में होता है तब उसमें कितना बल होता है ! और वही जीव जब बकरे के शरीर में होता है तब कितना गरीब हो जाता है !

●

जीव के लगने के दो ही स्थान हैं । वह भगवान में लगे

---

१. सिद्धान्त = अर्थ, तात्पर्य, मतलबा
२. अपना संकल्प पूरा करूँगा या फिर शरीर छोड़ दूँगा ।

या फिर संसार की माया में, पर बिना आधार के वह रह कैसे सकता है ?

●

यह लोक का इस जीव को फेर चढ़ गया है । वह जब बात सुनता है तब, जैसे जल के ऊपर का सेवार पर लकड़ी मारोगे तब वह दूर होकर फिर से वापस मिल जाएगी, वैसे ही वह इस संसार में भी वापस मिल जाता है, क्योंकि ऐसा इस जीव का स्वभाव है ।

●

यह जीव देह का गुलाम है और इस देह की सेवा करता है। भगवान से भी देह की रक्षा करवाता है । और भगवान को भी देह की सेवा में रखता है । पर प्रह्लाद ने न देह को रक्षणीय माना और न देह की रक्षा माँगी ।

●

हाथी पर अंबारी होती है, गधे पर नहीं । इसी तरह जीव हाथी के स्थान पर है और देह गधे के स्थान पर है, इसीलिए देह में सार नहीं मानना ।

●

निरंतर इस देह और इस लोक में सुख ही सुख मिलता रहे तो यह जीव क्या किसी भी दिन संसार से उदास होनेवाला है ? इसीलिए किसी न किसी कारण जो कठोर देशकाल[१] आते हैं वह भी ठीक ही है ।

●

जीव बिना शासन के यदि स्वतंत्र होकर रहेगा तो देह का

१. देशकाल = विभिन्न परिस्थिति

ही कीड़ा होकर रहनेवाला है ।

•

जैसा शब्द[१] सुनेगा वैसा जीव बन जाएगा । इसलिए शूरवीर भक्तों के ही शब्द सुने तो जीव में शक्ति आयेगी पर नपुंसक[२] की संगति से शक्ति नहीं आती ।

•

इस जीव ने करोड़ों वर्ष हुए, अपने मनचाहा ही किया है और वर्ष की जगह कल्प[३] बीत गये हों तो भी कह नहीं सकते। पर अब तो इस देह से भगवान को जो प्रिय है, उसे कर लेना चाहिए । आज्ञा में तर्क नहीं करना चाहिए । जितना मिल जाए[४] सभी का उपभोग नहीं करना चाहिए । त्याग करते रहना चाहिए ।

•

मुँह में खाते समय नीचे के दांत मूसल हैं और ऊपर के दांत ऊखल हैं, पर इनको समझे बिना इस बात का पता नहीं चलता । इसी तरह शरीर और आत्मा अलग-अलग हैं, पर सूक्ष्म निरीक्षण के बिना इसका भी ज्ञान नहीं होता और इस तरह की सूक्ष्म परीक्षा करके देखेंगे तो मालूम होगा कि सौ वर्ष पहले इस जाति में[५] कोई नहीं था और सौ वर्ष बाद भी कोई नहीं रहेगा ।

•

आत्मा महातेजोमय है । आत्मा को स्थूल, सूक्ष्म और कारण इन तीन शरीरों से अलग मानकर यह सोचना चाहिये कि मैं

---

१. उपदेश २. नपुंसक = कायर, डरपोक
३. १ कल्प = चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष । ब्रह्मा का एक दिन
४. पंचविषय ५. इस शरीर में

अक्षर हूँ और मुझमें ये प्रत्यक्ष पुरुषोत्तम भगवान सदाकाल बिराजमान हैं। इस आत्मा के साथ मनन के द्वारा इस प्रकार की संगति करते रहना कि मैं आत्मा हूँ, अक्षर हूँ। ऐसा यदि निरंतर किया करे तो वह अक्षरभाव को प्राप्त हो जाता है ।

इस पर एक दृष्टान्त है । महाराज ने एक शूद्र का लड़का था, उसको पूछा कि 'तू कौन है ?'

तब उसने कहा 'मैं शूद्र हूँ ।'

फिर महाराज ने कहा : 'तू दस बार ऐसा कह कि मैं आत्मा हूँ ।'

फिर उस लड़के ने उसी तरह कहा ।

फिर महाराज ने उसे पूछा : 'तू कौन है ?'

लड़के ने कहा : 'मैं शूद्र हूँ ।'

फिर महाराज ने कहा, 'तू सौ बार कह कि मैं आत्मा हूँ ।'

फिर उस लड़के ने सौ बार इस तरह कहा ।

फिर महाराज ने पूछा : 'अब बता, तू कौन है ?'

लड़के ने उत्तर में कहा : 'आपके कहने पर 'आत्मा हूँ' बोलूँगा लेकिन हूँ तो शूद्र ही...।'

तब महाराज ने कहा : 'देखो, देह के साथ यह कितना जुड़ गया है ?' (देह पर इसको कितनी ममता है ?)

ऐसा कहकर बोले की 'यदि आत्मा का मनन के द्वारा संग किया करे तो अक्षर रूप ही हो जाता है ।'

ध्येय

शरीर छूट जाने से क्या ? क्या जीव मरता है ? साधु होना, साधुता सिखनी और स्वभाव छोड़ना, ये ही वास्तव में करने जैसे हैं । पर मर गए, बस फिर कुछ भी करना शेष नहीं है

ऐसा नहीं समझना चाहिए ।

●

हमारा जन्म दो बातों को सिद्ध करने के लिए हुआ है । उसमें से एक है, अक्षर रूप होना, उसमें देह अंतराय रूप है । दूसरी बात है – भगवान के साथ जुड़ना, उसमें अनेक प्रकार के संग अंतरायस्वरूप हैं, ये दो कमियाँ पूरी करनीं ।

मोक्ष

करोड़ काम छोड़कर भी एक मोक्ष सुधारना चाहिए । यदि करोड़ काम कर लिए और एक मोक्ष बिगाड़ा तो उसमें क्या किया ? कुछ भी नहीं किया ।

●

मोक्ष के लिए तो भगवान और साधु ये दोनों ही हैं । दूसरी साधना का फल तो धर्म, अर्थ और काम हैं ।

●

मोक्ष के दाता तो भगवान और साधु ये दोनों ही हैं । वैराग्य तो विषय के साथ बैर कराता है, पर भगवान का काम नहीं करता । आत्मनिष्ठा भी सभी से प्रीति तुड़वाती है, पर भगवान का काम नहीं कराती । इसलिए मोक्ष के दाता तो केवल भगवान और साधु – ये दोनो ही हैं । अतः इनकी उपेक्षा नहीं करनी ।

●

धर्म सत्संग में[१] रखता है । वैराग्य के द्वारा संसार की नश्वरता दिखती है । अतः (इन दोनों से) मनुष्य व्यवहार में नहीं फंसता है । ज्ञान जो आत्मनिष्ठा उसके द्वारा देह के सुख-

१. आचार विचार में शुद्ध रखता है ।

दुःख में लिप्त नहीं हुआ जाता, पर इन तीनों से जीव का मोक्ष नहीं होता । मोक्ष तो उपासना[१] के द्वारा ही होता है ।

●

सत्संग से भगवान वश में होते हैं, वैसे किसी दूसरे साधन से नहीं । यह सत्संग क्या है ? प्रकट भगवान और प्रकट साधु का आश्रय लेने से कल्याण होता है । परोक्षभाव से कथा-कीर्तन, वार्ता और चर्चा से कल्याण होता है, ऐसा लिखा है, वह तो जीव को आलंबन[२] दिया है ।

●

तपस्या करके सूख कर कांटा हो जाए तो भी भगवान का आश्रय न किया हो तो भगवान मृत्यु समय लेने के लिए नहीं आते हैं । यदि भगवान का दृढ़ आश्रय लिया हो तो मखमली गलीचे पर सोए और दूध-पतासे, मेवा मिष्टान्न खाए, सेवा-टहल करनेवाले और कमानेवाले दूसरे हों तो भी उसे अंत समय में भगवान ले जाते हैं । इसलिए मोक्ष का कारण आश्रय है ।

●

आत्यंतिक मोक्ष ही सच्चा मोक्ष है । अक्षरधाम के अतिरिक्त दूसरे धाम में जाने से गर्भ में आना पड़ता है और गर्भ में जब तक आना पड़ता है तब तक मोक्ष हुआ नहीं कहलाता । ऐसा मोक्ष तो प्रगट भगवान और भगवान के एकांतिक संत का आश्रय लेने से ही होता है, दूसरे से नहीं । संत तो भगवान की तरह ही समर्थ हैं ।

●

---

१. उपासना = भक्त सहित भगवान की आराधना

२. आधार

जगत में दान-पुण्य, सदाव्रत बहुत लोग करते हैं, पर द्रौपदी का चीर, विदुर की भाजी और सुदामा के तंडुल बस इतना ही उल्लेखनीय रहा है । भगवान तो अधम-उद्धारक हैं, पतितपावन हैं और अशरण-शरण हैं, पर भगवान का आश्रय लें तभी न । इसलिए बिना आधार के दृढ़ता नहीं रहती है । तो फिर आधार किसे कहते हैं ? तो उसका उत्तर यह कि कुएँ में डूबते हो और कोई बचने का सहारा हाथ में आ जाए तो डूबे नहीं । प्रकट भगवान की शरण में जानेवाले को भगवान का ऐसा ही दृढ़ आधार रहता है । इसी तरह भगवान और संतों के आधार से मोक्ष की दृढ़ता रहती है । प्रकट सूर्य से उजाला होता है, प्रकट जल से मैला साफ होता है और प्रकट चिंतामणि से द्रव्यों की भूख मिट जाती है। वैसे ही प्रकट भगवान से मोक्ष होता है ।

●

श्रीजीमहाराज ने अनंत प्रकार की बातें जीव के मोक्ष के लिए प्रवर्तित की हैं, पर उनमें से जो चार बातें हैं वे तो जीव का भी जीवन हैं । १. महाराज की उपासना, २. महाराज की आज्ञा, ३. एकांतिक साधु के साथ प्रीति तथा ४. भगवदीय के साथ सुहृद्भाव । ये चारों बातें तो जीव के लिए जीवन हैं, इन्हें कभी छोड़नी नहीं ।

●

कल्याण की आवश्यकता कैसी होनी चाहिए ? उनहत्तर[1] के दुष्काल में भीमनाथ[2] के शंकर के मंदिर में भूखे गरीब मांगने के

१. उनहत्तर का दुष्काल = संवत १८६९ का भीषण दुष्काल

२. भीमनाथ शंकर का मंदिर – धंधुका के पास आये हुए इस मंदिर में गेहूँ की थूली का सदाव्रत दिया जाता था ।

लिए आते थे और गिड़गिड़ाते थे । धक्के मारने पर भी वे हटते नहीं थे, तो कल्याण की ऐसी ही आवश्यकता होनी चाहिये ।

●

इस जीव के लिए पंचविषय, छठा देहाभिमान और सातवाँ मिथ्या पक्ष[१] ये कल्याण के मार्ग में विघ्नरूप हैं । इनमें अभिनिविष्ट होने पर ये जीव का अहित करते हैं । इसलिए इनसे दूर रहना चाहिए ।

सत्संग

बड़े साधु का संग ही सत्संग है, और जिसने बड़े साधु को वश में किया, भगवान उसके वश में हो गए ।

●

सत्संग के द्वारा भगवान वश में होते हैं वैसे और किसी साधन से नहीं होते । सत्संग का तात्पर्य तो यही है, कि भगवान और संत के प्रति जितना सद्भाव हो, उतना ही सत्संग है । पर ऐसा होना दुर्लभ है ।

●

भगवान ने कहा है कि, मैं जैसे सत्संग के द्वारा वश में होता हूँ वैसे तप, यज्ञ, योग, व्रत, दान इत्यादि साधनों से नहीं । यह सत्संग क्या है ? तो बड़े एकांतिक संत[२] को हाथ जोड़ने और वे कहें वैसा करना यही सत्संग है ।

●

---

१. भगवान तथा गुणातीत संत के अतिरिक्त अन्य का पक्ष ।
२. धर्म, ज्ञान, वैराग्य और महिमा सहित भक्ति इन चार गुणों से युक्त संत एक भगवान में ही जुड़ा रहे, लीन रहे वह एकांतिक संत ।

सभी शास्त्र सत्पुरुष की संगति करने का प्रतिपादन करते हैं। संगति में भी ऐसा है कि जैसे पुरुष की संगति होती है वैसे ही गुण आते हैं। सर्वदेशी[१] पुरुष की संगति करने से सर्वदेशी ज्ञान प्राप्त होता है। एकदेशी[२] पुरुष की संगति से सर्वदेशी ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। क्योंकि धर्म, ज्ञान, वैराग्य, भक्ति महिमा इत्यादि में से जिसमें जिस अंग का प्राधान्य हो उसकी संगति से वह बात समझ में आती है। इसी तरह जो सर्व अंगों से पूर्ण हो और उसकी संगति की जाए तो सभी बातें समझ में आ जाती हैं, पर सर्वदेशी संगति मिलनी दुर्लभ है।

●

भगवान में जुड़े हो, भगवान की आज्ञा में रहते हों और भगवान की इच्छा को जानते हों ऐसे साधु के साथ अपने जीव को बांध दो, तो उसके द्वारा धर्म, ज्ञान, वैराग्य, भक्ति और महिमा सहित उपासना[३] ये सभी गुण प्राप्त किए जा सकते हैं, इसके बिना इन्हें प्राप्त करना कैसे संभव है? जैसे साधु की संगति करोगे वैसे ही गुण आएँगे। संगति किसी मुमुक्षु के पतन का कारण भी बन सकती है और किसी पामर के उत्थान का भी। इसलिए सभी का कारण संगति है।

●

---

१. सर्वदेशी पुरुष : धर्म, ज्ञान, वैराग्य और महिमा सहित भक्ति–इन चारों से संबंधित शास्त्रों का ज्ञाता सर्वज्ञ, बहुश्रुत पुरुष।

२. एकदेशी – एक ही विषय का ज्ञाता, मर्यादित ज्ञानवाला (संकुचित विचारवाला, अल्पज्ञ) पुरुष।

३. धर्म, ज्ञान, वैराग्य, भक्ति महिमा सहित उपासना = भगवान स्वामिनारायण के माहात्म्य को जानते हुए श्रद्धावान होकर उपासना करनी।

छोटे गाँव में लाख रूपयों की हुंडी लिख देनेवाला नहीं मिलता, वो तो शहर में मिलता है। करोड रूपयों की हुंडी तो किसी बहुत बड़े शहर में ही मिलती है। ठीक उसी तरह उत्तम संत का संग क्वचित स्थानों पर मिलता है।

•

मुमुक्षु यानी नेत्र, समागम यानी सूर्य। सूर्य होने से ही नेत्र से देख पाते हैं, ठीक उसी तरह चाहे जितना शुभ संस्कार हो फिर भी बिना समागम के वह नष्ट हो जाता है। संस्कार तनीक भी न हो फिर भी वह समागम से प्रादुर्भूत होता है अतः संत समागम बलिष्ठ है।

•

सत्संग प्राप्त होने पर भी संग के बिना सत्संग का सुख अनुभव नहीं होता। जैसे कि भोजन मिले वरन् बिना खाने के उसका सुख महसूस नहीं होता। एवं कपड़े, गहने मिले तो भी बिना पहने के उसका सुख नहीं आता वैसे ही संग के बिना सत्संग का सुख नहीं आता।

•

संत-समागम की पद्धति : प्रथम तो एकांतिक संत के साथ अपने जीव को बांध देना। वे साधु तो भगवान में स्थित होने से भगवान के गुण उन साधु में होते हैं। अतः उनके समागम में रहनेवाले मुमुक्षु में भी वही गुण आते हैं जो उनमें विद्यमान हैं। किन्तु जो ठीक तरीके से सुदृढ़ता के साथ उनके साथ जीव नहीं बांधता उसमें साधु के गुण भी आविर्भूत नहीं होते।

•

एक तो सौ जन्म लेने के बाद उत्तम भक्त-एकांतिक होनेवाला हो सो उसी जन्म में होता है । एवं इस जन्म में एकांतिक होनेवाला हो और उसे यदि कनिष्ठ संग मिल जाय तो सौ जन्म लेने पड़ते हैं । जैसे कि दश मन पत्थर के साथ एक मन लकड़ी बांधी जाय तो वह लकड़ी को डूबो देता है । एवं दश मन लकड़ी के साथ एक मन पत्थर बांधा जाय तो वह पत्थर को उबारती है । ठीक इसी तरह संग में भेद रहा है ।

●

जो जिसको प्रिय हो वही शिष्य को वह देता है, यथा पिता के हृदय में स्त्री है तो वह अपने पुत्र के हृदय में उसको डालता है । वैसे साधु को प्रियतम भगवान हैं तो वे जीव को भगवान की भेंट देते हैं । जैसे भोजन के बिना भूख नहीं मिटती, अग्नि के बिना ठंड नहीं हटती, सूर्य के बिना अंधेरा नहीं टलता वैसे समागम के बिना अज्ञान नहीं नष्ट होता । शिक्षित ही शिक्षा दे सकता है, अशिक्षित क्या शिक्षा दे ? वैसे समागम साधु का ही करना चाहिए । करोड़ जन्म तक अकेले बैठे अन्तर्दृष्टि किया करे फिर भी जो कार्यसिद्धि नहीं होती वह एक महीने के साधु समागम से होती है । संत समागम में इतनी प्रबल शक्ति है ।

●

सत्संग करने पर प्रथम विवेक उदित होता है, विवेक से सत्य-असत्य का ख्याल आता है । उसके बाद विमोक आता है । स्त्री-आदिक की इच्छा नष्ट हो वही विमोक । विमोक के बाद क्रिया-वर्तन सुदृढ़ होता है यानी कि सत्संग की रीति अनुसार जीवन में क्रिया होती है । उसके बाद अपना स्वरूप

सबसे पर यानी ब्रह्मरूप अनुभव होता है । तत्पश्चात् भगवान वरणीय होते हैं। फिर जिस प्रकार जीव देह की रक्षा करता है, स्त्री पति की सेवा करती है, वैसे ही भगवान सभी प्रकार से रक्षा करते हैं ।

•

जीव के सामने देखने पर लगता है कि उसमें मुमुक्षुता तो है ही नहीं। और जो मुमुक्षु हो वह तो भगवान या भगवान के साधु के बिना सुख-शांति कहीं भी नहीं मानता । जैसे सीप समुद्र में रहती है फिर भी उसे समुद्र का पानी उपयुक्त नहीं होता। वह तो जब स्वांत के बुंद गिरते हैं उन्हें कूद-कूदकर ग्रहण करती है तो उसका मोती लाख रूपयों का होता है। जो सीप मंद श्रद्धा से उस बुंद को पकड़ती है तो वह मोती अर्धलाख की कीमत का होता है । और जो मन्द श्रद्धा से सोते सोते बूंद लेती है उसका मोती फुसफुसा-निकम्मा होता है। ठीक उसी तरह जो मुमुक्षु, सत्पुरुष का संग मन-कर्म-वचन से करता है तो वह ब्रह्मरूप होता है । मन से सत्पुरुष में नास्तिकभाव न आ जाय इसका ख्याल रखना, कर्म से सत्पुरुष के वचन में देह को बरताना एवं वचन से सत्पुरुष में जो अनंतगुण हैं उसका गान करना।

•

हम छोटे थे तब छियालीस (संवत १८४६) के वर्ष में भारी हिम गिरा । मटकी में पानी लेने जाए तो पानी भी बर्फ़ बन गया था। ऐसा कड़ाके की सर्दी पड़ी थी । लोग बात करते थे कि 'चीर[१] जलाकर और उससे ताप कर भी शरीर को बचाना

१. रेशम का कीमती वस्त्र

चाहिए, ठीक वैसे ही सोने का घर जलाकर के भी ये बातें सुनना चाहिए ।

•

महान संत का समागम करने की महिमा कही कि रोटी खाने को मिलती है लेकिन वह भी शायद न मिले तो भिक्षा मांगकर भी साधु का समागम करना, अन्यथा कच्चे दाने चबाकर भी समागम करना अथवा उपवास करके या तो नींब खाकर या वायुभक्षण करके भी यह समागम करने लायक है । और जिसे कोई नौकर-चाकर हो या रोटी खाने मिलती हो वह यदि यह समागम नहीं करेगा तो उसे बहुत बड़ा नुकसान होगा ।

•

करोड़ जन्म तप करने से भी यह समागम अधिक है । संतसमागम से जो लाभ होता है वह करोड़ जन्म के तप से नहीं होता । अतः भगवान या भगवान के संत के पास गये बिना कोई छुटकारा नहीं । साधु के पास रहे बिना ज्ञान यानी समझ नहीं आती ।

•

ये बातें तो जादू हैं, जो सुनता है वह पागल हो जाता है । पागल कैसे ? तो जगत उसे मिथ्या लगने लगे । फिर उसे समझदार कौन कहेगा ?

•

संसार में फंसे (आसक्त हुए) बिना कोई रह नहीं सकता, पर यदि कोई उत्तम साधु का संग करे तो वह मुक्त हो सकता है, नहीं तो फंसा ही रहेगा ।

•

एक व्यक्ति दिनभर सारा कोट बांधकर खड़ा करे और दूसरा व्यक्ति सिर्फ़ उस पर छोटा सा कंकड डाले कि तुरन्त कोट गिर जाय – इन दोनों व्यक्ति में से अन्ततो गत्वा कोट बांधने वाला थककर हार जायेगा । इसका सिद्धान्त यह कि सारे दिन संसार-व्यवहार करो लेकिन एक घडीभर सत्पुरुष की बात सुनोगे तो संसार-आसक्ति दूर हो जायेगी ।

•

संसार की वासना हो और साधु का समागम नहीं किया हो तो वह शायद वन में जाकर रहे तो भी प्रीति तो गाँव में, घर में ही बनी रहती है । और त्याग किया जाय तो भी उसका ही भजन होगा । लेकिन जिसने संत-समागम किया होगा उसे विषय का भजन नहीं होगा, सिवाय कि देह से सिर्फ़ व्यवहार करेगा, अंतर से नहीं ।

•

सत्पुरुष के संग में यदि ध्यान-भजन की गौणता हो तो भले हो, संग जारी रखना । क्योंकि समागम होगा तभी तो विषय नाबूद होंगे वरना बिना संग के विषय कैसे नष्ट होंगे ?

•

भगवान की कथा कैसी है कि जैसे चोकीदार आकर कहे कि जागो, जागो । फिर यदि जागता रहे तो चोर का भय चला जाए ।

•

भगवान की महिमा

भगवान ही तो एक का अंक है और जो साधन हैं वे एक अंक

के आगे शून्य हैं । बिना एक के शून्यों का कोई मूल्य नहीं ।

●

चिंतामणि सुंदर नहीं होती है, वैसे ही भगवान और साधु भी मनुष्य की तरह ही होते हैं पर ये दिव्य और परम कल्याणकारी होते हैं ।

●

भगवान में मनुष्यभाव है ऐसा कहा ही नहीं जा सकता । हमारी देह जिस तरह अलग-अलग हैं, वैसे भगवान के लिए नहीं कहा जा सकता ।

●

हम मानते हैं कि हमें भगवान में प्रीति है, पर हमारी अपेक्षा तो भगवान और साधु को हमारे ऊपर हमसे अधिक प्रीति है ।

●

किसी मनुष्य पर उपकार किया हो तो वह कभी नहीं भूलता तो भगवान के लिए हमने कुछ भी किया हो या तो करेंगे तो उसे भगवान कैसे भूलेंगे ? भगवान को कुछ भी विस्मृत नहीं होता । भगवान की दया अपार है । सर्व जगह वहाँ से ही दया आती है ।

●

भगवान जीव के अपराध की ओर देखते नहीं है । यदि कोई जीव, भगवान की स्तुति करके बोले कि 'मैं गुनाहगार हूँ' तो उसके गुनाह को भगवान क्षमा कर देते हैं ।

●

'जो अंतर को पकड़ ले वह भगवान है ।' तब हरिभक्त ने पूछा : 'अंतर पकड़ने यानी क्या समझना चाहिए ?'

उसका उत्तर यह कि 'अपनी मूर्ति में जीव को खींच ले,

फिर उसका दोष परख करके दोष को दूर करे तो वह अंतर पकड़ा कहा जाता है ।

•

भगवान तो अपने भक्त की रक्षा करने के लिए ही बैठे हैं । कैसे ? तो जैसे पलक आँख की रक्षा करती है, माता-पिता बच्चों की रक्षा करते हैं, वैसे ही भगवान भी हमारी रक्षा करते हैं ।

•

एक हरिभक्त ने पूछा कि विपरीत देशकाल के समय भगवान याद नहीं आते हैं और उद्वेग होता है, तो इसका क्या मतलब है ?

तो इसका उत्तर यह कि भगवान सर्वकर्ता हैं । आपत्ति के देशकाल में तो किसी को भगवान याद नहीं आते हैं, पर इस लोक में आसक्ति नहीं रहती है । इस लोक में से वैराग्य हो जाए और आसक्ति न रहे इसीलिए तो भगवान उसे दुःख में रखते हैं । इसलिए भगवान को ही सर्वकर्ता समझना चाहिए ।

•

सौ करोड़ रूपये हों और एक नया पैसा खो जाए तो उसकी कोई गिनती नहीं । वैसे ही जिसे भगवान की महिमा समझ में आ जाए तो उसको इस लोक की किसी बात की गिनती नहीं रहती ।

संत

सभी साधन साधु के द्वारा सिद्ध होते हैं । इसलिए साधु को ही मुख्य समझना चाहिए । साधु गौण हो जाए और ज्ञान[१] मुख्य

१. ज्ञान = आत्मनिष्ठा

हो जाए, ऐसा नहीं करना चाहिए ।

•

बड़े साधु के प्रति जिसका जितना आदर है, उतनी ही उसमें सद्वासना[१] है और जितना अनादर है, उतनी ही उसमें असद्वासना है, ऐसा समझना चाहिए ।

•

सत्त्वगुण में इस तरह विचार करना चाहिए कि इन साधु के द्वारा मेरा मोक्ष होगा, इसलिए कितना भी दुःख क्यों न आए, उनका संग नही छोड़ना चाहिए ।

•

भगवान सर्वज्ञ हैं, वैसे ही बड़े साधु भी सर्वज्ञ हैं । ये तो भगवान जैसे ही हैं । ये सभी बातें जानते हैं । इसलिए इनके प्रति मनुष्यभाव न रखकर प्रार्थना करनी चाहिए, क्योंकि ये तो सब कुछ जानते हैं, सर्वज्ञ हैं ।

•

एकांतिक साधु के बिना दूसरे किसीको भी जीव के प्रति सच्ची प्रीति करनी नहीं आती । दूसरे प्रीति करते हैं, वे तो इन्द्रियों का पोषण करते हैं, जिनसे तो सर्वथा हमारा विपरीत होनेवाला है ।

•

यदि सच्चे साधु मिल जाएँ और वे कहें वैसा करें तो कोटि जन्मों में जो कमी पूरी होनेवाली हो तो वह आज ही पूरी हो जाए और वे ब्रह्मरूप कर दें ।

•

१. सद्वासना = पूर्व कर्मों के संस्कारों से सुदृढ़ हुई सुकामना

ऐसे साधु का मन में स्मरण करें तो मन के पाप जलकर खाक हो जाएँ, बातें सुनें तो कान के पाप जल जाएँ और दर्शन करें तो आंख के पाप जल जाएँ । इस प्रकार की महिमा समझनी चाहिये ।

●

शास्त्र में कठोर-कठोर प्रायश्चित्तों का विधान है । ऐसे प्रायश्चित्तवाले सभी पाप ऐसे साधु के संग और दर्शन करने मात्र से ही निवृत्त हो जाते हैं । ऐसा यह दर्शन है ।

●

दुर्लभ में दुर्लभ सत्संग, दुर्लभ में दुर्लभ एकांतिक भाव और दुर्लभ में दुर्लभ भगवान ये तीन बातें हमें मिल रही हैं । सूख जाओ, अन्न छोड़ दो, वन में जाओ या फिर घर छोड़ दो, पर इन सभी से भी अधिक उत्तम इस साधु की बातें सुननी हैं । ये तो पुरुषोत्तम के वचन हैं और गुणातीत की बातें हैं । इन बातों में से तो अक्षरधाम दिखाई पड़ता है । महिमा समझ में नहीं आती है, इस कारण जीव दुर्बल रहता है ।

●

संत सभी से बड़े हैं । कैसे ? जैसे सभी से पृथ्वी बड़ी है और उससे भी जल, तेज, वायु, आकाश, अहंकार, महत्तत्त्व, प्रधानपुरुष, मूल प्रकृतिपुरुष और अक्षर तक उत्तरोत्तर एक दूसरे से बड़े हैं इन सभी के आधार भगवान हैं । ऐसे बड़े भगवान को संत ने अपने हृदय में अखंड धारण कर रखा है, इस कारण संत सभी से बड़े हैं ।

●

जिस प्रकार गाय का बछड़ा गाय के शरीर में थन को छोड़कर और जगह कहीं भी मुंह मारे पर दूध का सुख नहीं

मिलता पर जब वह थनों को मुंह में लेगा तभी दूध का सुख मिलेगा । वैसे ही यह सारा सत्संग तो महाराज का शरीर है, पर जो बड़े एकांतिक साधु हैं, उनके द्वारा तो महाराज अखंड विद्यमान हैं । उनसे जुड़े तभी जैसे गाय के थनों में से दूध मिलता है वैसे ही महाराज का सुख मिल सकता है ।

•

प्रकट भगवान के बिना करोड़ नियम पाले तो भी कल्याण न होता । प्रकट भगवान और प्रकट साधु की आज्ञा से एक नियम रखे तो कल्याण हो जाए । आज तो अनुग्रह[१] किया है । अनुग्रह का मूल्य नहीं होता । इसलिए नियम का पालन करना और श्रीजीमहाराज भगवान पुरुषोत्तम को सर्व का कारण समझना । ऐसे ज्ञान को सुदृढ़ बनाना । फिर से कुछ भी करना शेष नहीं रहता । भजन कम होगा, तीर्थ कम होंगे, इसकी चिंता नहीं ।

•

चंद्र का प्रतिबिंब जल में गिरता है, तब उसे देखकर यह सोचकर मछली खुश होती है कि यह भी मेरे जैसी ही मछली है । मगर जैसा चंद्रमा है, जैसा उसका मंडल है, जैसा उसमें तेज है, जैसा उसका ऐश्वर्य है और सामर्थ्य है उसे मछली नहीं जान सकती है । उसी तरह समुद्र में जहाज चला जाता हो और बड़े से बड़ा जो मत्स्य हो, वह मन में यह सोचे कि यह भी मेरे जैसा ही बड़ा मत्स्य चला जा रहा है । पर वह यह नहीं जान सकता कि यह तो विशाल जहाज है, जो समुद्र को पार

---

१. अनुग्रह = पात्र-कुपात्र को देखे बिना भगवान जीव पर जो कृपा करते हैं वह ।

करवा देता है, लाखों-करोड़ों रूपयों का माल ले जाता है और लाता है ।

ठीक उसी तरह जैसे महाराज हैं वैसे ही महाराज के संत हैं। उनके स्वरूप, स्वभाव, गुण, ऐश्वर्य और सामर्थ्य को कोई भी नहीं पहचान सकता । जैसे मत्स्य जहाज को अपने जैसा ही समझता है वैसे ही जो मूर्ख है, और जो मूढमति जीव है वह संत को मनुष्य के जैसा जानता है । पर वे तो अनंतकोटि जीवों को ब्रह्मरूप करके अक्षरधाम में ले जाते हैं, ऐसा वह नहीं जानता; क्योंकि वह अज्ञानी है ।

•

देह से क्या मतलब है ? इसे बुद्‌बुदे[१] जैसा नाजुक बना रखा है, यह ठीक नहीं । जूते के जैसा मजबूत बनाकर रखो । ये देखो मेरे पैर वज्र जैसे कठोर हैं, न कांटा चुभता है और न उनमें दाह अनुभव होता है । एक बार हम महाराज के पास जा रहे थे, उस समय रास्ते में बबूल के कांटे 'करड़-करड़' करते रह गए और हम उन पर होकर निकल गए । कुछ भी नहीं हुआ । इस प्रकार देह को बुद्‌बुदे जैसा सुकोमल रखा तो थोड़ा सा पवन लगे कि जीव काँपने लगता है, इसलिए देह को लाड़ लड़ाना अच्छा नहीं ।

•

बाईस वर्ष से हमारी उम्र तो पूरी हो चुकी है, पर देह से मुक्त होने का तो विचार ही नहीं हो रहा है, क्योंकि उम्र पूरी होने की अवधि जिसके लिए होती है, उसके लिए वह है, पर मैं तो चिरंजीवी हूँ और तुम सभी की उम्र भी पाँच-दस वर्ष में ही पूरी हो जाएगी ।

---

१. जिसमें थोड़ी भी सहनशक्ति नहीं है ।

साधना

जो लिखा, उसे पढ़ा नहीं तो फिर लिखा, लिखा नहीं कहा जाएगा। कभी काल उसे पढ़ भी लिया, पर उसमें एकाग्रता नहीं सधी तो फिर वह पढ़ा, पढ़ा नहीं कहा जाएगा। कभी काल उसमें तन्मय बने भी लेकिन उसमें निर्दिष्ट मार्ग पर नहीं चले, तो फिर वह भी व्यर्थ है। इसलिए रज, तम न हो और सत्य में प्रवृत्ति हो, तब स्थिर होकर, स्थिर मन से पढ़ना। मन की जाँच कैसे करनी ? तो सभी शब्दों को अलग-अलग अपने अंतर में उतारने और जांचने कि उसमें लिखा है ऐसा वर्तन होता है या नहीं, इसकी जांच करके, वैसे ही करना।

●

यह जीव कौन से साधन करेगा ? तो जैसे कोस से जल खींचकर बगीचा तैयार करें तो उसमें कितनी परेशानी है ! उसमें भी पशु आदि खा जाएँ, पंखी खा जाएँ, चोर ले जाएँ तो भी न कम हो और कुआँ तालाब और नदी में जल कम हो जाता है पर समुद्र में नहीं होता । वैसे ही भगवान द्वारा कल्याण होना, ऐसा ही है। यह तो अतीव दुर्लभ है, पर महिमा समझ में नहीं आती है।

●

हम सभी काम छोड़कर, आकर, बेकार बैठकर बातें सुनते हैं तो ऐसा समझना कि करोड़ काम कर रहे हैं। यमपुरी, चौरासी लाख जितनी योनियाँ, गर्भवास इन सभी पर लकीर खींचकर इन्हें रद्द कर रहे हैं। इसलिए बेकार बैठे हैं, ऐसा नहीं समझना चाहिए।

●

मनुष्य जब तक मन के कहे अनुसार साधन करता है तब तक उसके लिए मन का राज्य दूर नहीं होता है । इसलिए भगवान और साधु जैसा कहें, वैसा करना । नियम में रहना, जिससें मूल ही नष्ट हो जाते हैं। अर्थात् फल-फूल होंगे नहीं। बल से नहीं पर कल (युक्ति) से जीत होती है।

●

जो करना शुरू करे, वह अवश्य पूर्ण होता है । मनुष्य समझता है कि ध्यान, भजन ये तो अपने आप हो जाए तो ठीक है, पर ये अपने आप कैसे हो सकते हैं ? मनुष्य भगवान को याद करता है और भूल जाता है। ध्यान करता है, फिर भूल जाता है। फिर भी ध्यान करना, भूल जाने पर स्मरण करना। भजन करने से यह सब हो सकता है, क्योंकि जो पढ़ता है वह भूलता भी है, पर जिसने पुस्तक को छुआ भी नहीं है, वह क्या पढ़ेगा ?

●

दूसरा सब कुछ तो भगवान करता है पर भजन करना और नियम का पालन करना, ये दो तो कोई दूसरा नहीं कर देगा। इनको तो खुद ही करना होगा । इन्हें जो करेगा उन्हीं के ये होते हैं ।

●

सत्संग में तीन प्रकार के मनुष्य हैं । उनकी पहचान इस प्रकार है : ज्ञान सिखते हैं और सेवा करते हैं वे आगे बढ़ते जाते हैं। देहाभिमान बढ़ाते हैं, वे हीन होते जाते हैं। कई तो जैसे हैं वैसे ही बने रहते हैं – न बढ़ते हैं न घटते हैं – ये तीन प्रकार के हैं। इन्हें बड़े साधु देखते हैं।

●

देह से क्रिया करता हो और अपना स्वरूप अलग समझकर भजन करे तो बहुत लाभ हो । लेकिन क्रियारूप होकर उसमें लीन हो जाए यह ठीक नहीं ।

●

भगवान का स्मरण करके यदि कोई क्रिया करता है तो वह कर्ता होने पर भी अकर्ता है । उसके बिना तो यदि कोई केवल बैठा ही रहेगा तो भी कर्ता है, ऐसा कहा जाएगा । और यदि भगवान का स्मरण करके खाता है, पीता है, सोता है, चलता है इत्यादि जो-जो क्रियाएँ करता है तो भी वह कुछ भी नहीं करता है और वह अकर्ता है ।

●

एक दिन एक साधु की भक्ति से प्रसन्न हुए श्रीजी महाराज बोले कि काम-क्रोध आदिक अंतःशत्रु जीव से तो अजेय हैं लेकिन हम और बड़े साधु तुम्हारे पक्ष में हैं, हम सहायता करेंगे फिर जीत आपकी होगी । अतः आप हिम्मत के साथ भक्ति में लगे रहना ।

●

भगवान की प्राप्ति होने के बाद अवशिष्ट कार्य यही है कि अपने आपको पहचान कर उसी ज्ञातृत्व के द्वार पर खड़े रहना, (जाग्रत रहना) संग को पहचानना एवं जिद्द, अभिमान तथा ईर्षा का त्याग करना ।

●

एक तो भगवान की आज्ञा का पालन करना और दूसरा संत के स्वरूप को समझना और तीसरा भगवान का स्वरूप समझना इन तीनों बातों में भगवान प्रसन्न, प्रसन्न और प्रसन्न हैं ही । वह

धन्य है, धन्य है और धन्य है । जिसे इन तीनों बातों को रखना ।

●

तीन बातें मुख्य रखना । बाकी दूसरे गुण जो त्याग, वैराग्य आदि हैं, तो किसी में कम तो किसी में अधिक भी होते हैं । अपितु एक उपासना, दूसरी आज्ञा और तीसरी भगवदीय के साथ सौहार्द, ये तीनों को अवश्य रखना । ये तीनों जिसमें हों, वह बड़े संत को अच्छा लगता है ।

●

उपासना और आज्ञा दोनों रखना । उपासना तथा ध्यान में भगवान का निश्चय समझना । आज्ञा में ब्रह्मरूप मानना । इससे मूल अज्ञान जो कारणदेह है, उसका नाश होता है ।

●

भगवान के स्वरूप में निष्ठा हुई, उसके सभी साधन हो चुके । शेष कुछ भी करना नहीं रहा ।

●

साधन के द्वारा यदि कोई निर्वासनिक हुआ तो उससे क्या मिल गया ? उससे क्या फल मिलनेवाला है ? वह तो वृक्ष जैसा है । भगवान में निष्ठा है और वासना है तो फिर किसकी चिंता है ? उस पर किसका भार है ?

●

चार घाटी हैं उसे पार करना चाहिए – १. भगवान की उपासना को समझना, २. साधु को पहचानना, ३. देह एवं आत्मा को अलग समझना, ४. उत्तम भोग में से आसक्ति का त्याग करना – इन चारों घाटियों से पार करने का प्रमुख उपाय साधु है ।

●

सत्संग में ऐसी बात होती है कि जीव ब्रह्मरूप हो जाय । फिर जीव ब्रह्मरूप क्यों नहीं हो जाता ? तो इसका कारण यह कि हेत के साथ सत्पुरुष में जीव को जोड़ा नहीं है । और सत्पुरुष में जीव को जोड़ भी दिया है फिर भी उनमें विश्वास नहीं आता और विश्वास भी हो फिर भी निष्कपट[१] भाव से वर्तन नहीं होता। यदि निष्कपट भाव से उनके साथ व्यवहार करे तो जीव ब्रह्मरूप हुए बिना न रहता – यह सिद्धान्त बात है ।

●

सत्पुरुष के गुण मुमुक्षु में तब आते हैं जब वह सत्पुरुष को निर्दोष समझे, सर्वज्ञ माने, एवं उनके साथ किसी भी प्रकार का अंतराय (आवरण) न रखे । तभी सत्पुरुष के गुण मुमुक्षु में आते हैं, अपितु इसके बिना तो गुणप्राप्ति नहीं होती ।

●

भगवान के भक्त के गुणगान करने से जीव ब्रह्मरूप हो जाता है । यह सत्य बात समझना । लेकिन अमुक ऐसा है, अमुक वैसा है - यूं भगवान के भक्त का दोष उच्चार नहीं करना चाहिए ।

●

जैसा दूसरे को समझाने का आग्रह है ऐसा स्वयं समझने का प्रयास हो, एवं जैसा दूसरों के दोष देखने का आग्रह है ऐसा अपने दोष टालने का आग्रह हो तो तनीक भी कचाई-कमी रह ही नहीं पाती ।

●

मान-अपमान में अपने को अक्षर मानना यानी हमसे कोई

---

१. मन की बात कह देना।

बड़े नहीं अतः किससे मान या किससे अपमान ?

•

सब साधन में भजन करना श्रेष्ठ है, भजन से भी स्मृति रखना श्रेष्ठतर है और उससे भी ध्यान करना श्रेष्ठतम है – इन सब से भी अपनी आत्मा में भगवान को धारण कर रखना अत्यंत श्रेष्ठतम है ।

मन

कितनों को मन खेलाता है एवं कितने मन को खेलाते हैं – यह बात नित्य विचारणीय है ।

•

बड़े संत के पास निष्कपट होने में बहुत ही लाभ है । एक व्यक्ति को रूप दिखाई दिया, उसका आकार मन में जम गया। उसने बड़े संत के पास जाकर कहा तब उन संत ने श्रीजीमहाराज की स्तुति करके उनके मन में से रूप को खदेड़-टाल दिया ।

•

ज्यों गाय बछड़े के लिए पासना-पेन्हाना छोड़ती है ठीक उसी तरह शिष्य गुरु को मन सौंप दे तो उसका भीतरी अज्ञान को गुरु नष्ट कर देते हैं वरन् इसके बिना कोई इलाज नहीं ।

•

बड़ों के साथ जीव जोड़ता है तब दोष दूर हो जाते हैं और उसके आते हैं । जैसे कि काच को सूर्य के सामने रखे तो उसमें से अग्नि पैदा होती है ।

•

छोटे नाले का पानी जैसे बड़ी नदी में मिलता है और फिर

वह नदी समुद्र में मिलती है, इसी तरह अल्प जैसा जीव यदि बड़ों के साथ जुड़[१] जाए तो वह भी भगवान को प्राप्त कर सकता है । ऐसा बड़ों का प्रताप है ।

•

एक के अंतर में कलह[२] चला करता है और दूसरे के नहीं, तो इसका क्या कारण है ? तब स्वामी ने कहा, 'घर में साँप हो, उसे चुहे खाने को मिलते हो, तब तक तो वह खिसियाता नहीं, पर चूहों को निकाल बाहर करें, तब वह घर के दूसरों को डँसता है । वैसे ही मन और इन्द्रियों के कहे अनुसार चले तब तक कलह नहीं होता हो और उन्हें दबाकर, एंठकर चले तो कलह होता है ।

वासना

दोष रहते हैं और दूर नहीं होते तो यह भी एक प्रकार का दोष ही है या फिर इसमें भी कोई गुण है ? दोष पीड़ा देता है, जिसके कारण सत्संग में दीन-अधीन रहा जाता है, सत्संग की गरज रहती है और भगवान की स्तुति होती है । दोष का कलह हो तो उसके कारण ज्ञान होता जाता है । इसके बिना ज्ञान की गरज महसूस नहीं होती । इसलिए दोष में गुण है ।

•

पूर्व के संस्कारों के कारण वासना बीजरूप है । यह तो यदि बड़े संत को मन सौंपकर प्रसन्न करे तो उनके अनुग्रह से दूर हो सकती है । इसे दूर करने का अन्य कोई उपाय नहीं है ।

•

---

१. मन अर्पित करे, हेत और आत्मबुद्धि करे ।
२. काम-क्रोधादि अंतःशत्रुओं का क्लेश ।

हीरा किसीसे भी टूटता नहीं, पर खटमल के रक्त से टूट जाता है । वैसे ही वासना और किसी उपाय से दूर नहीं होगी, पर यदि बड़े संत कहे वैसा करे, और उसका गुण आए और उसकी क्रिया अच्छी लगे तो वासना टलती है । नहीं तो साधन तो सौभरि आदि ऋषियों ने कैसे-कैसे किए हैं ? तो भी उनकी वासना दूर नहीं हुई ।

●

वासना जठराग्नि से नहीं जलती है, बाहरी अग्नि से नहीं जलती है, प्रलयकालीन अग्नि से नहीं जलती है । जिस प्रकार पृथ्वी के अंदर बीज हैं, वे आग लगने पर भी नहीं जलते, फिर से अंकुरित हो जाते हैं । उन बीजों को तवे पर भून दे तो वे अंकुरित नहीं हो सकते । वैसे ही वासना का बीज आग से नहीं जलता पर ज्ञानरूपी आग से जलता है । यह ज्ञानरूपी आग क्या है ? तो भगवान की उपासना और आज्ञा । इससे वासनालिंग कारण-देह का नाश होता है । दूसरे किसी भी साधन से नाश नहीं होता है । आज्ञा का पालन होता है, इसलिए वासना जलती है । यह आज्ञा कौन-सी है ? तो अपनी आत्मा को ब्रह्मरूप मानकर भगवान की भक्ति करनी । इस आज्ञा का पालन हो जाए तो कारण-देह का नाश होता है ।

●

स्वभाव का बल सबसे अधिक है । यह कैसे ? तो जैसे कि विषय के संकल्प हों उसे वासना कही जाती है, परन्तु भगवान का स्मरण करते हुए जो संकल्प होते हैं वे सभी स्वभाव कहलाते हैं ।

विषय-खंडन

इस जीव को पांच वस्तुएँ अवश्य चाहिए, क्योंकि इनके बिना चले नहीं । बाकी तो सभी के बिना चल सकता है । ये पांच वस्तुएँ हैं : अन्न, जल, वस्त्र, निद्रा और स्वाद में नमक । इनके बिना बाकी सब ढ़ोंग है ।

•

परछाई को लांघा नहीं जा सकता, वैसे ही पंच विषयों को भी लांघना-पार करना कठिन है । इसलिए ज्ञान होता है तब सुख मिलता है ।

•

जो कुछ माया में सुख है, वह बिना दुःख का नहीं है । इस बात को भी गांठ बांधकर रखो ।

•

भगवान के भक्त को विषय-सुख मिले वही नर्क़ है ।

•

जो विषय से बंधा वह बद्ध, तथा दूर रहा वह मुक्त है । इसलिए हमें दूर रहना चाहिए ।

•

महाराज कहते थे कि विषय का स्पर्श ही नहीं करना जिससे मन इन्द्रियों तक पहुँचे ही नहीं । इसलिए विषयों से दूर रहना । और भगवान मिले हैं, अब ऐसी स्थिति में यदि विषयों में आसक्ति रही तो बहुत घाटा होगा । किसीने कहा कि विषय ज्ञात नहीं होते हैं । तब स्वामी ने कहा कि मीठा, खारा, खट्टा, अच्छा इनका स्वाद जानने में आता है या नहीं ? आता है, पर

जीव को छोड़ना नही हैं । अरे, इसको छोड़ने की जरूरत ही कहाँ महसूस होती है ? देख लो, गरज में गधे को भी बाप कहता है । तो इस जीव ने हड्डियां, मांस और नर्क युक्त जो यह देह है, इसीमें सबकुछ माना है, पर यह रहेगा नहीं ।

●

चाहे किसी भी मक़सद से कहा जाए कि एक रत्तीभर संखिया खा लो, तो भी कोई मानेगा नहीं । वैसे ही विषय का रूप ऐसा विषतुल्य ज्ञात हो जाय फिर उसे भोगा नहीं जा सकता ।

●

रूपवती स्त्री, खूब धन और अच्छा भवन मिले तो सत्संगी भी माया में बंध जाएँ, कारण कि इतने में से जीव हटता नहीं है । इसलिए यह जो जैसा-तैसा साधारण मिल जाता है, वही ठीक है ।

●

इस जीव को यदि इसकी आजीविका टूटे तो इसे कैसा लगे । वैसे ही इस देह की पंच विषयों की आजीविका सत्संग करने के बाद टूट जाती है । नेत्रों को रूप की, रसना को रस की, नासिका को गँध की, त्वचा को स्पर्श की – इन सभी की आजीविका टूट जाती है, फिर कैसा सुख ?

●

एक बार कोई मुमुक्षु एक सद्‌गुरु के पास द्रव्य लेकर गया और पूछा कि इस द्रव्य का क्या करना चाहिए ? तब उस गुरु ने कहा कि द्रव्य तू रखे या मैं रखूँ या फिर किसीको भी दें, तो सभी का यह बुरा करे वैसा है । ऐसा कहकर गंगा में डलवा दिया ।

●

नंद राजा ने सारी पृथ्वी का धन इकट्‌ठा किया और

आखिर अंत में उसीसे उनकी मौत हुई । चित्रकेतु राजा ने करोड़ स्त्रियाँ इकट्ठी कीं और अंतिम समय में उनसे दुःख मिला तब उन्हें छोड़ा । तो यह मार्ग ऐसा ही है ।

●

एक बार हम धोराजी की सीम के एक मैदान में बैठे हुए थे । वहाँ खाद के ढेर के ढ़ेर पड़े हुए थे । वहाँ एक सांड था वह दूर से दौड़-दौड़कर खाद में सींग खोंसकर एक-दो टोकरों के जितनी गोबर की गंदगी अपने सिर पर डाल रहा था । वैसे ही प्राणी मात्र गंदगी बिना नहीं रहता ।

विषय-निवारण

विषय से तो जीव कभी अपने आप अलग हो ही नहीं सकता। विषय को छोड़ने चले तो दुगुना बंध जाए । बड़े साधु द्वारा विषय से अलग हो सकते हैं । जैसे कि दूध और पानी किसीसे भी अलग नहीं हो सकते, पर हँस से अलग हो सकते हैं ।

●

कोई कुएँ में गिरने निकला हो तो हजारों आदमी बीच में आकर उसे गिरने से रोक लें; वेसै ही सत्पुरुष और सत्शास्त्र के शब्द बहुत सुने हों तो विषय-मार्ग से रक्षा करें ।

●

पूरे कल्प तक भगवान के सामने देखता हुआ बैठा रहे तो भी निषेध किए बिना विषय दूर न होंगे । साधु मिले तो विषय दूर होंगे । निर्विकल्प समाधि में बैठें तो भी विषय दूर नहीं होते । ज्ञान की समाधि में बैठे तो दूर होते हैं ।

●

कोटि कल्प से विषय के भोग का खड्डा पड़ा हुआ है, उसका पाटना असंभव है । उसे पाटने का सभी शास्त्रों में एक ही उपाय बताया है कि स्वयं की आत्मा को ब्रह्मरूप मानकर भगवान की भक्ति करनी ।

•

संकल्प होते हैं तो भीतर आसक्ति है इसलिए होते हैं । जो देखा है, वही आगे आकर विघ्न बनता है । कलकत्ता देखा नहीं है तो सपने में भी नहीं आता है । जहर खाने के या अफीम पीने के संकल्प होते हैं ? इसलिए नियम में रहकर खाना चाहिए, देखना चाहिए और बड़े साधु को विनय से कहना चाहिए तो धीरे-धीरे दूर हो जाएँगे ।

•

अब अवसर मिला है तो भूत के बांस की तरह मन को सेवा में लगा देना चाहिए । विषय के उपभोग में कमी करते रहना चाहिए, नहीं तो नियम नहीं रहेगा । अधिक खाना और अधिक सोना नहीं चाहिए । क्योंकि सोते-सोते अन्न हजम होकर इन्द्रियों को बलवान बनाएगा । इसलिए विषय के उपभोग में कमी करते रहना चाहिए ।

•

विषय के मार्ग में अंधे होना, बहरा होना, लंगड़ा होना पर आसक्त नहीं होना चाहिए ।

•

विषय से संबंध हो उसके पहले तो बकरे की तरह डरना और संबंध हो जाए तो वहाँ सिंह हो जाना ।

•

अंतर में भजन करने की आदत डालो, जिससे विषय में आसक्ति कम होगी ।

●

कोई लोभ छोड़े, कोई स्वाद छोड़े, कोई स्नेह-प्रेम छोड़े, कोई मान-अपमान छोड़े पर स्त्री तो हृदय में से निकलती ही नहीं है । रूप जैसा कोई बलवान नहीं है । यह विषय तो जीवमात्र में है । यह तो बड़े संत अनुग्रह करें तभी दूर हो सकता है, उसके बिना नहीं ।

●

हे परमहंसो ! स्त्री रूपी तलवार से कौन नहीं मरा है ? हे परमहंसो ! दुःख देने में युवावस्था सबसे ऊँची सीढ़ी है । उसमें तप, व्रत, योग और अंत में साधु की संगति करके इस युवावस्था को पार करनी और भगवान में जी लगाना चाहिए ।

●

निष्कामी वर्तमान में घाटा होने की बात श्रीजीमहाराज को अच्छी नहीं लगती, क्योंकि इसीको दृढ़ करने के लिए, उन्होंने अवतार लिया है ।

●

निष्कामी वर्तमान में जिसको न्यूनता होगी उससे भगवान के धाम में जाना मुश्किल होगा । यदि वह पहुँच भी गया तो वहाँ रह नहीं पायेगा । नियमलोप से श्रीजीमहाराज अप्रसन्न होते हैं ।

●

एक बादशाह की सेना में लाखों सैनिक थे । वे युद्ध में गए । उस समय जो कायर थे, उन्होंने तो इस प्रकार विचार किया कि इतने सैनिकों में बादशाह किसको पहचान सकेगा ?

जान सकेगा ? – ऐसा सोचकर लड़े नहीं और पीछे ही दबके रहे । कई सैनिक बहादुरी से आगे बढ़े और युद्ध करके विजय प्राप्त की । फिर बादशाह ने मंत्री से कहा कि अब हमें परीक्षा लेनी है कि कौन विजयी हुआ है, कौन अच्छी तरह से लड़ा है ? इसके लिए सभी बुलाए जाएँ । फिर यह कहा जाए कि बहादुर सैनिकों को सम्मान में पोशाक देनी है । उस समय सभी आएँगे तब परीक्षा इस तरह हो जाएगी कि जो बहादुरी से आगे बढ़कर लड़ा होगा वह सीधा बेधड़क तख़्त पर बादशाह के सामने आएगा और जो कायर होगा उसकी बादशाह के सामने न नज़र उठेगी और न पैर ही । इसी तरह हम पाँचों इन्द्रियों रूप-शत्रु के सामने नहीं लड़ेंगे तो भगवान के सामने नज़र नहीं उठा सकेंगे। धाम में जाएँगे तो उस समय नीचे देखना पड़ेगा ।

●

ब्रह्मचर्य रखने का उपाय यह कि आँख, कान, नाक और मन ये चार चोरी कर जानेवाले हैं, इन पर निगाह रखकर इन्हें काबू में रखना चाहिए । इनमें से आँखों को तो बंद कर देनी चाहिए, जिससे कुछ भी पैदा ही न हो, क्योंकि ये आँखें ही सभी उपद्रवों का मूल है । फिर खाना और सोना इनमें तो विषय ही हैं । इसलिये धीरे-धीरे संकल्प बंद करके भजन करना चाहिए और मन पर विश्वास नहीं करना चाहिए ।

●

जब कभी कामादि उत्पन्न हों तब इनकी उपेक्षा करनी चाहिए । इनका संकल्प छोड़कर दूसरें काम में लग जाना चाहिए । जिससे इनके संकल्प का बल कम हो जाएगा ।

●

कामादि दोष, ज्यों-ज्यों भगवान की आज्ञा में रहेंगे त्यों-त्यों कम होंगे, पर इनका बीज तो रहेगा ही । बड़े संत की दृष्टि पड़े तभी ये बीज नष्ट होते हैं । बड़ों की दृष्टि भी गुण से और सेवा करने से प्राप्त होती है ।

समझ

कई धर्म में बड़े चुस्त होते हैं, पर समझ कम होती है । कई धर्म में सामान्य होते हैं पर समझ अच्छी होती है, इसलिए समझ होती है, वह वृद्धि को प्राप्त करता है ।

•

हम भगवान के हैं, माया के नहीं, इस तरह समझना चाहिए ।

•

भगवान को स्तुति करनी, पर स्वयं को पतित और अधम नहीं मानना चाहिए । क्योंकि इस तरह मानेगा तो जीव में बल नहीं रहेगा और जीव को ग्लानि हो जाएगी । हमें तो भगवान मिले हैं इसलिए पतित क्यों मानें ? हमें तो स्वयं को कृतार्थ समझना चाहिए ।

•

यदि कोई मारकाट मचाता आ रहा हो तो ऐसा समझना चाहिए कि मेरे स्वामी का ही किया सब कुछ हो रहा है, उसके बिना कोई पत्ता भी नहीं हिला सकता ।

•

घर में रहो तो मेहमान की तरह रहो ।

•

कर्म करो पर मन से अलग रहो । धृतराष्ट्र और भीम मिले

इस प्रकार का देह के साथ संबंध समझना । कोई उसके साथ प्रीति करने आए, उसका त्याग करना । कर्म में हर्ष-शोक होते हैं, यही माया का रूप है । देह से कर्म करो, पर जीव को भगवान में ही लीन रखो । 'मैं भगवान का हूँ और भगवान मेरे हैं ।' इस तरह जीव को संलग्न कर दो । भजन कम होगा, कीर्तन कम गाए जाएँगे, इसकी चिंता न करो ।

●

जीव का और देह का व्यवहार अलग-अलग समझना चाहिए । ऐसा नहीं समझोगे तो इस श्रेष्ठ उपलब्धि के बाद भी निर्बल ही माने जाओगे । भगवान की आज्ञा से गृहस्थी बने तो भी निर्बंध रहता है ।

●

हमें तो भगवान मिले हैं, इसलिए स्वयं अक्षर मानना चाहिए ।

तब प्रश्न पूछा गया कि विषय पराभव देनेवाले हों, उस स्थिति में स्वयं को अक्षर कैसे समझना चाहिए ?

तब उत्तर में कहा गया कि विषय तो देह के भाव हैं, फिर भी स्वयं को अक्षर ही मानना चाहिए । पर आत्मा को नर्क का कीडा नहीं मानना चाहिए । जैसे वामनजी के साथ-साथ उनकी लकड़ी भी बढ़ती गई वैसे ही सत्संग में हम तो बढ़ते ही चले जा रहे हैं ।

●

स्वयं को जीवरूप माने उसमें तो दोष हैं, पर अक्षररूप माने उसमें दोष नहीं हैं । अक्षरधाम में जाना है, ऐसा अनुसंधान रहता है; परन्तु जब स्वयं को ही अक्षर मान लेता है,[१] फिर

१. अर्थात् यहीं सदेह ही उसे अक्षरधाम प्राप्ति के आनंद की अनुभूति होती है ।

उसके लिए जाना कहाँ शेष रहता है ?

•

कथा करता है, कीर्तन करता है, बातें करता है, पर यह देह मैं नहीं हूँ ऐसा नहीं मानता है । इसलिए आठो प्रहर भजन करना चाहिए कि मैं देह नहीं हूँ और देह में रहनेवाला मैं आत्मा हूँ, ब्रह्म हूँ, अक्षर हूँ और मुझमें परमात्मा-परब्रह्म पुरुषोत्तम प्रकट प्रमाण और अखंड हैं । वे कैसे हैं ? तो वे सर्व अवतारी हैं; सर्व कारणों के कारण हैं; सब से पर हैं । वही प्रकटरूप में जो मुझे मिले हैं, वे हैं । इस बात में सांख्य और योग दोनों का समन्वय हो गया ।

•

तीर्थ में जल की बुद्धि नहीं रखनी चाहिए । भगवान के भक्त में जाति की बुद्धि नहीं करनी चाहिए । भले ही फिर वह भगवान का भक्त श्वपच ही क्यों न हो ! तो भी वह अपने समस्त कुटुंब का मोक्ष करता है और उसके विपरीत यदि बारह गुणों से संपन्न ब्राह्मण ही हो तो भी वह अपना भी मोक्ष नहीं कर सकता है ।

•

डांट-फटकारने पर समझदार आदमी खुश होता है, पर जो मूर्ख है वह प्रशंसा करने पर खुश होता है । – ऐसा श्रीजीमहाराज कहा करते थे ।

•

स्वयं में जो सद्‌गुण हो, उन्हें दूसरों के सामने प्रकट करे वह कनिष्ठ है और जो प्रकट भी नहीं करे और छिपाए भी नहीं वह मध्यम है और छिपाकर रखता है, वह पुरुष उत्तम है ।

•

गाफ़िलता को नाबूद करने का एक उपाय है खटक रखनी और दूसरा उपाय तो कोई दंड दे, डांटे-फटकारे तब वह मिटती है ।

सांख्य

हम सोचें कि हजार रूपये मिलेंगे तो उसका क्या फल होगा ? लाख रूपये मिलेंगे उसका क्या फल होगा ? और करोड़ रूपये मिलेंगे तो उसका क्या फल होगा ? क्योंकि भूख से अधिक तो नहीं खा सकेंगे । इसलिए इस पर सोचना चाहिए और वापस पीछे लौटने की आदत डालनी चाहिए ।

•

सांख्य में दृढ़ता कैसे हो सकती है ? कोई आदमी मर जाता है, देह से बूढ़ा हो जाता है, उसे देखना चाहिए । तथा नित्य प्रलय, निमित्त प्रलय और प्राकृत प्रलय पर विचार करना चाहिए। सांख्य और योग सिद्ध करने का कारण यह समागम है ।

•

सांख्य पर नित्य प्रति नियमपूर्वक विचार करना चाहिए । बिना सांख्य के सत्संग अधूरा कहलाता है । बिना सांख्य के सुख नहीं मिलता है । सांख्य तो आँख है और आँखों से ही सब कुछ देखा जाता है । सांख्य पर विचार करने लगे तो धीरे-धीरे इसमें सिद्धि मिलने लगती है । तो फिर यह सांख्य क्या है ? तो यह लोक और सभी भोग मिथ्या हैं । आत्मा ही सत्य है । आत्मा आकाश की भांति निर्लिप्त है एवं देह, इन्द्रियाँ, अंतःकरण से असंगी (भिन्न) है ।

•

द्रव्य और यह देह इन दोनों पर ही सारा व्यवहार टिका

हुआ है । तो इन दोनों को 'मिथ्या' 'मिथ्या' कहते हैं, तो ये मिथ्या कैसे हो सकते हैं ? बात तो ऐसी है कि द्रव्य और यह देह ये दोनों मिथ्या हैं। ऐसे शब्द बार-बार सुनने से आधा तो मिथ्या हो ही जाता है, फिर उसे धक्का नहीं लगता है ।

●

भांड किसी स्त्री का वेश धारण करता हो उसे मूर्ख व्यक्ति स्त्री ही समझ लेता है लेकिन बुद्धिवान पुरुष तो सही रूप से उसे पहचान लेता है, ठीक, उसी तरह जगत को मिथ्या समझ लेना चाहिए ।

●

यह देह हड्डियों की है । स्त्री की देह भी हड्डियों की है और बाल-बच्चों की देह भी हड्डियों की है । इस तरह इनमें कोई सार नहीं है । चूना सफेद मिट्टी है, वैसे ही यह भी मिट्टी है। देह मिट्टी की है । रूपये मिट्टी के हैं । कुटुंबी मिट्टी के हैं । आहार मिट्टी का है। घर मिट्टी का है । जीव माल समझकर इनसे चिपका हुआ है, पर काल खा जाएगा । इसलिए भगवान का भजन कर लेना चाहिए ।

ज्ञान

एक ही दिन में राज्य दिया जा सकता है, पर विद्या नहीं दी जा सकती । राजा का पुत्र हो और उसे कितना भी क्यों न खिलाया-पिलाया जाए तो भी वह एक दिन में बड़ा नहीं हो सकता । वह तो धीरे-धीरे ही बड़ा होगा । वैसे ही ज्ञान भी सत्संगति से धीरे-धीरे प्राप्त होता है ।

●

ज्ञान हुआ तभी कहा जा सकता है कि शास्त्रों को सुनकर अथवा किसीकी बातों में विश्वस्त होकर या तो संग में फँसकर हम मुकर न जाएँ। इसीको पक्का ज्ञान कहते हैं।

●

पहली साधन दशा में तो पूर्ण ज्ञान न हो जाए तब तक पूर्ण सुख भी नहीं मिलता है। जैसे थोड़ी वर्षा हो तब नदी में नया-पुराना जल इकट्ठा होने से पूरा ही बिगड़ जाता है। फिर काफ़ी वर्षा हो तब सारा जल नया आ जाए वैसे ही परिपूर्ण ज्ञान होने पर ही सुख मिलता है।

●

इस जीव को कभी बुढ़ापा[१] आता है या नहीं? जीव को जब ज्ञान प्राप्त होता है तब बुढ़ापा आता है, इसके बिना बुढ़ापा कभी नहीं आता।

●

व्यवहार को देह से करो और मन से अलग हो जाओ। वह मन से चिपकने लगे तब ज्ञान के द्वारा उसका त्याग करो।

●

जैसे जाति का, नाम का और गाँव का निश्चय हुआ है, वैसे ही ऐसा अभ्यास करें कि मैं आत्मा हूँ, ब्रह्म हूँ, सुखरूप हूँ, भगवान का भक्त हूँ पर मैं देह नहीं हूँ, ऐसा करें तो भी हो सकता है। यह देह हमें नित्य नर्क़ का स्पर्श कराती है, इससे बुरा क्या हो सकता है? पर बिना ज्ञान के यह कैसे समझ में आए?

●

जहाँ से[२] एकदम भागना है, वहाँ पुरुषार्थ करता है और जहाँ

---

१. विषयासक्ति का कम होना। २. मृत्युलोक से

से[१] कोटि कल्पों के बाद भी वापस नहीं लौटना है उसके लिए पुरुषार्थ नहीं करता है । यही तो अज्ञान है ।

•

कुरूप स्त्री की ओर मन आकर्षित नहीं होता और रूपवती स्त्री की तरफ मन आकर्षित होता है ऐसा जीव का स्वभाव है, पर इनमें रूपवती जैसी बंधनकारी है वैसी कुरूप स्त्री बंधनकारी नहीं है । जैसे कि अच्छे घोड़े में जितना दुःख है, उतना टट्टु में नहीं, क्योंकि टट्टु पर से गिरेंगे तो चोट कम आएगी । और बाजरा-घास (चंदी) भी कम चाहिए और उसकी रक्षा की चिंता भी कम रहेगी । इसी तरह अच्छा खिलाना, अच्छे कपड़े-लत्ते आदि अनेक विषय हैं, इन सब में जैसा अच्छे में बंधन है वैसा उतरते में नहीं । पर जीव में जब तक राग है, आसक्ति है, ज्ञान का अभाव है तब तक यह बात समझ में नहीं आती है । पदार्थ पर विचार करना हो तो आदि तथा अंत का करना चाहिए, पर मध्य को नहीं देखना चाहिए; क्योंकि मध्य में तो मोह है और वही अज्ञान है ।

•

देह अपनी नहीं है फिर भी अपनी मान बैठा है, यही तो अज्ञान है । यह अज्ञान तो दूर नहीं होनेवाला है । जिस पर भगवान और बड़े साधु कहें उसीका अज्ञान दूर हो सकता है ।

•

श्रीजीमहाराज का अवतार हुआ है, तो वह अज्ञान के मूल को नष्ट करने के लिए हुआ है । वह अज्ञान का मूल क्या है ? तीन देहों से अलग अपने शुद्ध स्वरूप को न समझे और भक्ति करे यही अज्ञान है । यह बात करोड़ो जन्म लेने पर भी समझ में

१. अक्षरधाम से

नहीं आती है । बड़े साधु समजाएँ तभी समझ में आता है ।

निश्चय

सभी उत्तम गुण अभ्यास और सत्संग से प्राप्त होते हैं, पर भगवान और साधु के प्रति निष्ठा तो पूर्व के संस्कारों और बड़ों के अनुग्रह से ही होती है । जितना बड़ों की सत्संगति में रहा जाए उतना ही उसको संस्कारवान तथा अनुग्रहपूर्ण समझा जाए ।

•

शुद्ध स्वरूपनिष्ठा रखनी, नहीं तो कमी पूरी नहीं होगी । इसके लिए ये प्रकट पुरुषोत्तम श्रीजीमहाराज सहजानंद स्वामी सर्व अवतारों के अवतारी, सभी के कारण, सर्व नियंता है। इसमें लेशमात्र भी अन्यथा नहीं है, ऐसा समझकर पतिव्रता की रीति से चले तो ठेठ अक्षरधाम में पहुँच जाए ।

•

भगवान तथा एकान्तिक संत के प्रति निश्चय हो, उसके लक्षण यही कि घर में सौ करोड़ मन अनाज भरा हो और रूपये हो फिर कैसा भी दुष्काल पड़े तो मरने का डर न हो तथा दो हजार बख्तरिया सैनिक हो तो लुटे जाने का भय न हो । इस तरह निश्चयवाले को काल, कर्म और माया का डर नहीं रहता है। वह स्वयं को पूर्णकाम माने और भगवान के सिवाय किसीकी भी अपेक्षा न रखे ।

•

एक हरिभक्त ने पूछा कि प्रकट भगवान और साधु मिले हैं तो पूर्णकाम मानना या फिर वासना मिट जाए तो मानना ? इसके उत्तर में कहा : 'निश्चय हुआ, जिससे वासना अपने

आप ही दूर हो गई । इसलिए पूर्णकाम मानना चाहिए और आज्ञा पालन में रुचि रहनी चाहिए ।

आज्ञा

गांव को किला–गढ़ होता है उसी तरह हमारे लिए पंचव्रतों[१] का गढ़ है एवं थाने के स्थान पर नियम[२] हैं । जैसे थाना गढ़ की रक्षा करता है, वैसे नियम पंचव्रतों की रक्षा करते हैं । अतः जितनी न्यूनता नियमपालन में होगी, इतने छिद्र समझ लेने ।

•

जितनी आज्ञा पलेगी उतनी वासना भस्म होगी । आज्ञा यानी शिक्षापत्री[३], निष्कामशुद्धि[४], धर्मामृत[५] – इन तीनों आचारसंहिता का कड़ा पालन करके वासना को खत्म करना । एवं मन के संकल्प को बन्द करना सो तो कठिन काम है लेकिन स्थूल देह से बर्तना और आज्ञापालन करना वह तो हो सकता है । उसमें जितना फ़र्क उतना कुसंग है ।

•

दूर रहते हुए भी आज्ञा में रहनेवाला हमारी समीप में ही है और आज्ञाभंग करनेवाला हमारी समीप में होने पर भी दूर है । चाहे जितना ज्ञानी होगा, प्रीतिवान होगा, बड़ा साधु होगा – लेकिन आज्ञा का लोप करने पर वह सत्संग में नहीं रह पायेगा । जैसे पतंग उडाने पर दूर गई है लेकिन डोरी हाथ में होगी तो वह

१. पंचव्रत : निष्काम, निर्लोभ, निःस्वाद, निःस्नेह, निर्मान ।
२. नियम : इन्द्रियसंयम । विषयों की ओर मन–इंद्रियों को जाते रोकना ।
३. भगवान स्वामिनारायण ने लिखी हुई सर्वजीवहितावह आचारसंहिता ।
४. स्वामिनारायण के साधुओं के लिए विशेष नियमावली ।
५. साधुओं के लिए पंचव्रतों का आचारग्रंथ ।

समीप में ही है । ठीक वैसे ही आज्ञा रूप डोरी जिसके हाथ में है तो वह श्रीजीमहाराज की समीप में ही है ।

●

स्वामिनारायण ने इस पृथ्वी पर आकर पाँच पैर गड़े हैं, उन्हें गलत साबित करके कोई अपने जीवन का हित नहीं कर सकता । वे पांच पैर क्या है ? तो निष्काम, निर्लोभ, निःस्वाद, निःस्नेह और निर्मान ये जो पाँच पैर हैं, उन्हें कोई हटा नहीं सकता ।

●

संत कहे वैसे करना यह श्रेष्ठ है और मनचाहा करना यह कनिष्ठ है । मनचाहा करता हो और फिर त्याग करता हो, सारे मंदिर का काम अकेला करता हो तो भी न्यून है और ऐसे तो उसको किसी दिन विघ्न-बाधक बनेगा ही । पर जो तीन बार खाता हो, आलसी हो और उंघता हो - ऐसे दोषों से युक्त हो फिर भी यदि वह अपनी मनपसंद छोड़कर संत कहे वैसे करे तो वह अधिक है । संत कहे वैसा करना यह निर्गुण है और मनपसंद का करना यह सगुण है ।

• सेवा

ज्ञान निवृत्ति में होता है, पर सारे दिन बेकार नहीं बैठा जाता, इसीलिए हम सबको प्रवृत्ति में जोड़ते हैं, नहीं तो देहाभिमान पैदा हो जाता है ।

●

सेवा क्या है तो बड़े एकांतिक की मरज़ी में मन, कर्म, वचन से बर्तना, इससे बढ़कर कोई सेवा नहीं है ।

●

सेवा तो अपनी श्रद्धा (शक्ति) के अनुसार हो सके उतनी करनी, पर असेवा तो कभी नहीं करनी। असेवा क्या है ? तो किसी में दोष देखना।

●

श्रद्धा की वृद्धि कैसे हो ? स्वामी बोले : 'ऐसा प्रतीत हो कि बड़े संत बोलते हैं, वे कोई मनुष्य नहीं बोलते हैं, पर ईश्वर बोलते हैं। उनके प्रति देव-बुद्धि हो, उनकी सेवा भक्ति करें और विनय का आचरण करें, इनसे श्रद्धा बढ़ती है। फिर भगवान में जुडा जाता है।'

भक्ति

इस देह से भगवान का भजन कर लेना चाहिए। देह का अभी पतन होगा। इसलिए यह तो बिजली की क्षणिक चमक में मोती पिरो लेने की तरह अल्पकाल में ही अपना काम निकाल लेना है।

●

बाजरा इकट्ठा करके भगवान का भजन कर लेना चाहिए। दूसरा कुछ भी लेने से काम नहीं होनेवाला है। रूपये होंगे तो मर जाने के बाद पड़े रह जाएँगे, इसलिए इनका कोई खास अधिक उपयोग नहीं समझना चाहिए। जितने जरूरी लगे उतने इकट्ठे करके भजन करना चाहिए। ज्यादा होंगे तो न जाने किधर उड़ जाएँगे और वासना रह जाएगी।

●

घर बेचकर भी भगवान का भजन करना चाहिए, क्योंकि देह चली जाएगी फिर घर में कौन रहेगा ?

●

कलियुग में तप हो सके ऐसा नहीं होता, इसलिए तप करना लिखा नहीं है । कीर्तन-भक्ति करने से ही पाप जल जाते हैं ।

●

'कलौ कीर्तनात्' इसका अर्थ है, कलियुग में तमोगुण, रजोगुण अधिक होता है । इस कारण कीर्तन करना चाहिए और भजन करना चाहिए, जिससे तमोगुण नहीं घुसेगा । भजन इस प्रकार करना चाहिए कि जैसे दो हजार घोड़ों के टापों की आवाज़ हो रही हो तो दूसरी कोई भी आवाज़ सुनाई न दे वैसे ही जल्दी-जल्दी भजन करना चाहिए, जिससे संकल्प नहीं घुस सकेंगे ।

●

बाहर भजन[१] करने से मनोवृत्ति बाह्य हो जाती है, अतः जब रजोगुण एवं तमोगुण का आधिक्य हो तो ऐसा करना, लेकिन सत्त्वगुण में तो भीतर - अंतःकरण - में ही करना । यूँ करने से भगवान की स्मृति अधिक होती है । अतः भीतर गहराई में उतर जाना और भजन करना ।

●

फिर, एक यह काम भी कठिन है ? वह यह कि सबेरे से दोपहर तक आँखें बंद करके बैठा नहीं रहा जा सकता । इसलिए जन्मभर बाह्य दृष्टि से बैठना होता है । बाह्य दृष्टि से यदि माला फेरे तो मन दूसरी और भटके और आँखें बंद करके फेरे तो भगवान का स्मरण हो । वैसे तो सारा दिन माला फेरे, पर भगवान का स्मरण करके तो पाँच भी न फेर सकेगा, क्योंकि वे पाँच कुछ और ही ढंग से फेरी जाती है । इसलिए धीरे-धीरे नित्य भगवान के साथ जुड़ते रहना चाहिए । यदि

---

१. उच्च स्वर से

ऐसा न हो सके तो पहले साधु के साथ जुड़े और इसके बाद तो भगवान में सहज ही में जुड़ जाएगा ।

•

कितने व्यक्ति मवेशी के साथ जीव बांधते हैं एवं उन्हें सँभारते हैं । मवेशी भी उसके वश हो रहते हैं और उनकी पीछे फिरते हैं। ठीक वैसे ही भगवान के सामने देखे, उसके साथ जीव बांधे, तो वे वश होये बिना कैसे रह पाये ? वे तो फिर उनके पीछे ही फिरते हैं एवं सन्मुख देख रहते हैं, क्योंकि वे भक्तवत्सल हैं । अतः एव भगवान के सामने देख रहना । दूसरा पेड़ आदि कुछ भी देखना नहीं । देह को घिसना हो तो रात्रि में दो-दो घण्टे भजन में बैठना ।

•

एकाग्र हुए बिना कुछ भी प्राप्त नहीं होता । भोजन मिले और पेट में जाकर वह पचे और फिर यदि भजन न करे तो भगवान का वह अपराधी है । जब नहीं मिले तब तो वह कैसे भजन करें ? पर जब मिले और न करे फिर तो वह भगवान का अपराधी है।

•

फिरंगी नित्य कवायत करवाते हैं, इसी कारण उनके आदमी मजबूत होते हैं । इसी तरह यदि कथा-वार्ता, प्रश्न-उत्तर करने-सुनने को अभ्यस्त हो जाएँ तो उसकी जीवात्मा की वृद्धि (अध्यात्म पथ पर गति में) होती है, और उसमें बलसंचार होता है । लेकिन इसके बिना वह बलिष्ठ नहीं होती ।

•

बार-बार अंतर्दृष्टि करनी चाहिए कि मैं यहाँ क्या करने आया हूँ और क्या कर रहा हूँ ? देह उन्मत्त है, इन्द्रियाँ उन्मत्त

हैं, इसलिए पहले भक्ति करनी चाहिए, क्योंकि भक्त पर श्रीजीमहाराज खूब प्रसन्न होते हैं और भक्ति के द्वारा व्रत-उपवासों के द्वारा, तप के द्वारा अतीव निर्दय एवं कठोर बनकर इन्द्रियों को तथा देह को दंड देना चाहिए। तभी ये भगवान का भजन करने देंगी और भगवान प्रसन्न होंगे।

इसी देह से भक्ति करते-करते आत्मा की आज्ञा का पालन करना चाहिए। आत्मनिष्ठा जैसी कोई बात नहीं है और मनन-चिंतन के द्वारा 'मैं अक्षर हूँ और पुरुषोत्तम मुझमें बिराजमान हैं' ऐसा करते रहना चाहिए। यही सूक्ष्म भक्ति है, इसीके द्वारा आत्यंतिक मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

•

भक्त चार प्रकार के हैं : मुक्त, मुमुक्षु, विषयी और पामर। इनमें से जो पामर होता है वह किसी पदार्थ के लिए भगवान को भजता है। जो विषयी होता है वह इस लोक के सुख का त्याग करके दूसरे सुख की इच्छा करता है। जो मुमुक्षु होता है वह कैवल्यार्थी[1] के सुख को चाहता है। जो मुक्त होता है वह केवल भगवान की मूर्ति को ही चाहता है।

•

भक्ति में स्वभाव बढ़ता है और ध्यान में देहाभिमान बढ़ता है। इन दो गुणों में रहे दो दोषों को जानकर इन्हें दूर करने चाहिए।

•

भक्ति करे या फिर रात्रि में ध्यान करे और मन में यूँ समझे कि ये सभी तो खा-खाकर सो रहे हैं और मैं अकेला ही

---

१. ब्रह्मस्वरूप होना

भक्ति कर रहा हूँ तो मान लो कि सब कुछ खाक हो गया !

●

भगवान के कथा-कीर्तन होते हों तब ध्यान करना छोड़ दो, क्योंकि इनसे ज्ञान प्राप्त होगा तभी तो ध्यान हो सकेगा ।

●

धर्म आदि की अपेक्षा ध्यान श्रेष्ठ है, उससे भी ज्ञान श्रेष्ठ है और बड़े संत की आज्ञा में रहकर उन्हें प्रसन्न करना उससे भी अधिक श्रेष्ठ है, क्योंकि इसमें तीनों आ जाते हैं। भगवान की महिमा का ज्ञान होते ही अपने आप भगवान के प्रति प्रीति उत्पन्न हो जाती है और प्रीति होते ही आज्ञा का पालन होता है ।

●

जो भगवान को भजना चाहता हो, वह सभी की मरज़ी नहीं रख सकता, वह तो केवल भगवान की ही मरज़ी रख सकता है ।

अवगुण

नित्य लाख रूपये लाता हो और सत्संग की निंदा करता हो तो वह मुझे अच्छा नहीं लगता है । सोता-सोता खाए, पर भगवान के भक्त की प्रशंसा करता हो तो मैं उसकी सेवा करने को तैयार रहता हूँ । ऐसा मेरा स्वभाव है ।

●

काम, क्रोधादिक जो दोष हैं, वह तो देह के भाव हैं, इसलिए दूर हो जाएँगे और बड़े संत कृपादृष्टि करें तो अभी ही दूर हो जाएँ पर बड़ों में दोष देखना यह तो क्षयरोग के जैसा है ।

●

गुण में भी दोष रहते हैं । यह कैसे तो जैसे कि स्वयं त्याग

करे और यदि दूसरा त्याग न करे तो उसकी निंदा करे । खुद न सोए पर कोई दूसरा सो जाए तो उसकी निंदा करे । यह बात जरूर समझ लेनी चाहिए ।

ध्यान

एक से पचास माला फेरते समय तक यदि एकाग्र दृष्टि रख सके तो सुखपूर्वक ध्यान में बैठा जा सकता है, नहीं तो संकल्प हुआ करते हैं ।

•

सर्वज्ञ तो भगवान हैं और दूसरे अल्पज्ञ हैं, इसलिए पतिव्रता के नियम का पालन करना चाहिए तथा ध्यान भगवान का ही करना चाहिए और यदि बहुत बड़े साधु का ध्यान करे तो वह भगवान से मिला दे । जिस रूप में भगवान मिले हों यदि उसी रूप का ध्यान करे तो वह भगवान से मिला दे ।

•

क्या ऐसा ध्यान सीखे हैं कि तीनों देहों को जीतकर ध्यान किया जा सके ? तब पूछा कि तीनों देहों को किस प्रकार से जीतना चाहिए ? इसके उत्तर में कहा कि ध्यान करने बैठे तब जीवजंतु काटे तो भी स्थूल देह को हिलने नहीं देना, ऐसा करने से स्थूल देह पर विजय प्राप्त की है, ऐसा कहा जाएगा । सांसारिक संकल्प विकल्प बंद करके ध्यान करने का मतलब है, सूक्ष्म देह पर विजय प्राप्त करनी । निद्रा-आलस्य न आने देने का मतलब है कारण देह पर विजय प्राप्त करनी । इस प्रकार तीनों काले-कलूटे के जैसे कठोर हैं, इसलिए बहुत दुःख भोगने से ही उस पर विजय प्राप्त की जा सकती है । जैसे कि कुएँ में

से चट्टान काटनी हो तो उसे छेनी, हथोड़ा लेकर तोड़े तभी सांझ तक टोकरी के जितने पत्थर के टुकड़े निकलें, ऐसा कठोर है। तब स्वामी बोले कि हम सुरंग देकर दोसौ-दोसौ गाडियाँ भर जाएँ उतने पत्थर निकाल लेते हैं तो यह कैसा है, तो वार्तारूपी छेद में हम भगवान के निश्चयरूपी बारूद को भरते हैं और फिर उस पर भगवान और भगवान के साधु की महिमारूपी अग्नि रखते हैं, जिसके द्वारा कारण शरीररूप जो अज्ञान है और वही काला पर्वत है, उसे तोड़कर हम ब्रह्मरूप करके महाराज की सेवा में अक्षरधाम में रखते हैं, तो यह कोई कठिन नहीं है।

आश्रय

एक हरिभक्त ने पूछा : 'हे महाराज, आश्रय का क्या रूप है ?' तब उत्तर में कहा : स्त्री-पुत्रादिक का आश्रय है, वैसे ही यदि रूपये होंगे तो भूखे नहीं मरेगा, सो यह आश्रय है और भगवान के बिना दूसरे किसीमें भी सार न माने, यह भी आश्रय का रूप है। ऐसा आश्रय हो तो उसे भगवान साधु का संग करवाकर, ज्ञान देकर अपने पास रखे और ऐसे भक्त की चिंता भगवान को रहती है।

•

भगवान के जैसा तो कोई नहीं है और वे हमें मिले हैं। जिसने दांत दिए हैं, क्या वह खाने को नहीं देगा ? हमारे भाग्य में क्या भोजन भी नहीं लिखा है ? हमने क्या भगवान को बेच खाया है ? इसलिए हमें भगवान भूखा उठाएँगे, पर भूखा सुलाएँगे नहीं। किसी भी रूप में वे हमें भूखा नहीं रखेंगे। यदि कहीं पृथ्वी का राज्य दे दिया होता तो हम अभी नरक में पड़े सड़ रहे होते। इसलिए हमें नहीं दिया है। यह देह तो पत्तल के स्थान

पर है, उसमें भोजन कर लेना चाहिए । वह कैसे ? तो इस देह से भगवान से मिल चुकने के पश्चात् फिर इसका कुछ भी हो ।

●

कोई भगवान का स्मरण करता हो तो मैं उसकी सेवा कराऊँ, उसके कपड़े धुलवाऊँ और उसे घर-बैठे ही भोजन करवाना है ।

●

लाख को छोड़कर भी एक को रखो । श्रीजीमहाराज भी ऐसा ही कहते हैं कि पांडवों ने सब कुछ छोड़कर भी केवल एक कृष्ण को पकड़े रखा, इसे समझना चाहिए ।

●

अतःकरण को शेखचिल्ली के विचित्र मकान जैसा नहीं रखना। उसमें कई खंभे नहीं रखने, पर एक भगवान रूपी खंभा ही रखना । कल्याण के लिए आशरा और प्रीति ये दो आधार है ।

●

हमारे पास ज्ञान तो है नहीं और वैराग्य भी नहीं है । इसलिए मैं भगवान का हूं और वे मेरे हैं । ऐसा मानकर चलना चाहिए । प्रीति तो पन्द्रह आनी संसार में है और एक आनी हमारे में है। कल्याण तो उसकी (संत की) शरण में गए, इसलिए वह समर्थ है, वह करेगा ही । ऐसा करना उसका बड़प्पन है ।

●

बड़े संत थोड़ी भी दृष्टि करें तो उसको कामादि पीड़ा नहीं दे सकते । कोई अपने आप कितना भी प्रयत्न क्यों न कर लें, पर कामादि उसे पराजित किए बिना नहीं रहेंगे। इसलिए बड़ों का दृढ़ आश्रय ग्रहण करना चाहिए ।

●

गृहस्थाश्रम में रहकर जो कथा-वार्ता करता है और सुनता है, उसके तो त्रिविध-ताप टल चुके हैं, सभी प्रकार के तप भी हो रहे हैं । और भगवान की शरण भी वह प्राप्त कर रहा है । श्रीमद् भागवत में ऐसा भगवान कपिलदेव ने कहा है । गृहस्थाश्रम में बहुत काम और बहुत विघ्न हैं । इसीलिए उसे अधिक कहा गया है । ग्रहस्थाश्रमी के लिए भगवान की मूर्ति के धारक साधु आश्रयरूप हैं । इसीलिए तो ग्रहस्थाश्रमी घर में बैठे बैठे ही सर्व तीर्थों का सेवन कर रहा है ।

गुरु

गुरु की शुद्धि तीन प्रकार से देखनी चाहिए । एक उसका अपना वर्तन देखना, दूसरा जिसको उसने इष्ट के रूप में स्वीकार करके सेव्य बनाया है, उसका सामर्थ्य देखना और तीसरा उसके संग द्वारा जो बने हों, उनको जानना – यों परीक्षा करनी चाहिए ।

●

गुरु के मिलने के बाद भी शिष्य के गर्भवास आदि दुःखों का कष्ट दूर नहीं हुआ तो वह गुरु ही नहीं है ।

●

जिसके गुरु अक्षर हों तो उसे अक्षरधाम में ले जाएँ और पुरुषोत्तम से मिलवाएँ ।

हेत

भगवान में और साधु में प्रीति रहेगी तो सभी उससे प्रीति करेंगे । इसके विपरीत चलने पर सभी उसके प्रतिकूल हो जाएँगे ।

●

बड़ों के साथ प्रीति हुई हो तो वासनापूर्ण हृदयवाले के अंतर को भी सुख मिलता है और इसके अभाव में घर बार छोड़कर संन्यासी हो जाए तो भी शुष्क रहे ।

अनुग्रह

काम, क्रोध, मान, ईर्ष्या और देहाभिमान इन सभी से मुक्त हो जाएगा तब भगवान और संत प्रसन्न होंगे ।

●

भजन करते-करते कर्म भी करें तो अंतर में शांति रहती है और अंतर में शांति देखकर बड़े साधु प्रसन्न हों और जिस पर बड़े साधु प्रसन्न हों, उसका जीवन सुखी-सुखी हो जाए और जिसका अंतर ज्वालाओं से धधकता हो, अशांत हो, उसे देखकर कैसे प्रसन्न हुआ जाए ? महाराज ने कहा कि मैं जिस पर प्रसन्न होता हूँ तो उसे या तो बुद्धियोग देता हूँ और फिर उत्तम साधु की संगति प्रदान करता हूं । बुद्धियोग क्या है ? तो बुद्धि का वह ज्ञान जिससे भगवान प्रसन्न हों । तब प्रश्न किया : 'भगवान निरंतर प्रसन्न कैसे रहते हैं ?' फिर स्वामी बोले : 'भगवान को निरंतर प्रसन्न रखना हो तो उसे भगवान की आज्ञा का लोप नहीं करना चाहिए और हमें भगवान का स्वरूप मिला है, तो उसके बिना अन्यत्र किसी से भी सुख की इच्छा नहीं करनी चाहिए तो उस पर भगवान और बड़े साधु निरंतर राजी रहे, इसमें थोड़ी भी शंका नहीं है ।

●

श्रीजीमहाराज और बड़े संत की कृपादृष्टि कब प्राप्त हो ? तो दृढ़ धर्म हो तथा आत्मा-परमात्मा का अति दृढ़ ज्ञान हो

तथा पंचविषयों के प्रति अतिशय दृढ़ वैराग्य हो तथा पुरुषोत्तम भगवान में माहात्म्य ज्ञान सहित अनन्य भक्ति हो, तो उसी पर कृपादृष्टि होती है, पर देहाभिमानी पर कभी कृपादृष्टि नहीं होती ।

मंत्र-महिमा

'स्वामिनारायण' मंत्र के जैसा शक्तिशाली आज कोई दूसरा मंत्र नहीं है । इस मंत्र से तो काले नाग का भी जहर नहीं चढ़ता । इस मंत्र से तो विषय भी उड़ जाते हैं, (जापक) ब्रह्मरूप हो जाता है और उसके काल, कर्म, माया के बंधन छूट जाते हैं । ऐसा प्रबल यह मंत्र है, इसलिए निरंतर इसको जपना चाहिए ।

•

पांच-दस बार जान-अनजान में भी कोई 'स्वामिनारायण, स्वामिनारायण' नाम लेगा, उसका भी हमें कल्याण करना होगा और संपूर्ण ब्रह्माण्ड को सत्संग कराना है ।

संगठनभाव

अधर्मसर्ग अर्थात् माया-मोह क्यों कर प्रविष्ट होते हैं ? तो जब एक दूसरे के मन अलग हो जाते हैं तब प्रविष्ट होते हैं । एक दूसरे के प्रति प्रेम हो तो माया-मोह को प्रविष्ट होने का अवसर ही नहीं मिले । इस पर राजा और तूणीर (तरकश) की बात कही । इसी तरह तुम सभी मेल-मिलाप से रहोगे तो कैसा भी अंदर का शत्रु होगा, वह तुम्हें पराजित नहीं कर सकेगा । इस प्रकार नहीं रहोगे तो अल्प जैसा दोष होगा तो भी वह सत्संग में से बाहर करवा देगा ।

कर्म

संचित, क्रियमाण[१] और प्रारब्ध कर्म के ये तीन रूप हैं। नियम धारण किया है, उसी दिन से संचित यानी जो पूर्वकृत पाप हैं वे जल जाते हैं। क्रियमाण करने नहीं हैं। प्रारब्ध को भोगते समय हिचकिचाना नहीं। यदि प्रारब्ध नहीं भोगेंगे तो देह छूट जाएगी, क्योंकि प्रारब्ध के द्वारा ही तो देह बंधी है इसलिए भोग लेने चाहिए। यह केवल कांटे से ही शूली के कष्ट से मुक्ति मिली है, ऐसा समझो।

पूर्व संस्कार

पूर्व के संस्कार से पूर्व जन्म का अर्जित कर्म ऐसा अर्थ लेना ठीक नहीं है। हम आज जो क्रिया करते हैं, वह आनेवाले कल की दृष्टि से पूर्व कहलाएगी। इसलिए हमें बड़ों का संग प्राप्त हुआ है तो यह हमारे लिए काफ़ी पूर्व कहा जाएगा।

ग्राम्यवार्ता

तीन व्यक्ति ग्राम्यवार्ता कर रहे थे, उनके लिए महाराज ने कहा कि उनको मेरे पास न आने देना, क्योंकि वे ग्राम्यवार्ता करते हैं। इसलिए हमें चाहिए कि प्रयोजन हो उतनी ही बात करनी। राजा, साहूकार इत्यादि की ग्राम्यवार्ताओं से क्या लाभ है? भगवान बिना की बात करनी और भगवान की स्मृति बिना खाना, यह धूल के बराबर है।

---

१. वे नये कर्म जो बंधनरूप हों, उन्हें नहीं करना।

विघ्न

यह जीव जो भगवान के सन्मुख जा रहा है, उस मार्ग में विघ्नरूपी गढ़ है। इस लोक में जाति-पांतिवाले, परिवारवाले, माता-पिता, स्त्री, द्रव्य, इन्द्रियाँ और अंतःकरण ये गढ़ हैं।

व्यवहार

जहर के लड्डू खाते समय अच्छे लगें, पर कुछ देर बाद गला जलने लगता है। वैसे ही यह व्यवहार भी है।

साम-दाम-भेद-दंड

श्रीजीमहाराज कहा करते कि हरिभक्त कभी सुखी नहीं रहता है। उसे रूपये दिये जाएँ तो उसे दर्शन करने के लिए जाने की भी फुरसत नहीं मिलेगी और गरीब रखा जाएगा तो कहेगा कि पेट का खड्डा ही नहीं भरता, फिर दर्शन करने कैसे जाएँ? इसलिए दोनों तरह से जीव भगवान को नहीं भजता है। इसके लिए हम चार उपाय करते हैं: साम यानी वार्ताएँ करते हैं, दाम यानी भगवान देते हैं, भेद यानी सभी को[१] असत्य कहते हैं और दंड अर्थात् यमपुरी की यातना दिखाते हैं।

मनुष्य को वश में कैसे करना?

कैसा भी टेढ़ा आदमी क्यों न हो, उसे वश में किया जा सकता है, पर उसमें कुशलता चाहिए। उसको आदर दें, उसकी बात रखें उसे उसका दुःख-दर्द बार-बार पूछें, इस तरह

१. अक्षरधाम के अतिरिक्त सभी प्रपंच को

उसे वश में करें । और यह कोई कठिन काम नहीं है । यदि हम उसके हो जाएँगे तो वह भी हमारा हो जाएगा ।

दोषों का घर

जो शांत होता है, उसमें काम और अभिमान रहते हैं । जो तेज मिजाजवाला अर्थात् उग्र स्वभाव का होता है वह स्वमानी होता है ।

बुद्धि

श्रीजीमहाराज कहते हैं, मुझे बुद्धिमान पसंद है, क्योंकि उसमें सत्य-असत्य का विवेक होता है । वह कार्य-अकार्य, अर्थात् यह करना चाहिए और इसे नहीं करना चाहिए – इस प्रकार का विवेक रखता है । वह भय-अभय को जानता है तथा किसमें बंधन है तथा किससे मोक्ष है यह वह जानता है ।

लाभ

इन नेत्रों को इस साधु के दर्शन हों, त्वचा को इसका स्पर्श प्राप्त हो, इस पर चढ़े हुए पुष्पों की सुगंध नासिका से ली जाए और रसना से उसके प्रति आदर प्रकट हो, बस इतना ही लाभ है ।

अंतर्दृष्टि

निरंतर सर्व क्रियाओं में पीछे मुड़-मुड़कर देखना कि मुझे भगवान को भजना है और मैं क्या कर रहा हूँ ? इस प्रकार देखते रहना चाहिए ।